UNIVERSAL LIBRARY
OU_176164
UNIVERSAL LIBRARY



प्रेमदीपिका

महात्मा अक्षरअनन्य कृत



राय बहादुर लाला सीताराम, बी. ए.



हिंदुस्तानी एकेडेमी, यू. पी.



OUP —43—30-1-71—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. Accession No.

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक—
हिंदुस्तानी एकेडेमी, यू. पी.
इलाहाबाद

P. G.

प्रथम संस्करण
मूल्य ॥)

मुद्रक—जी. पी. केसरवानी
राजपाली प्रेस
इलाहाबाद

भूमिका



पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण बहुत प्रसिद्ध है। कितने पुराणों का तो लोग नाम भी नहीं जानते। कहते हैं कि जब और पुराण बन गये और उनके निर्माता ब्यासजी को तृप्ति न हुई तो उन्होंने श्रीमद्भागवत पुराण की रचना की।

इस में १२ स्कंध हैं परन्तु इसका दशम स्कंध, जिसमें कृष्णावतार की लीला का वर्णन है, अत्यन्त रोचक है, और इसके अनुवाद करने वालों ने अपनी ओर से नमक, मिर्च लगा कर इसे और भी रोचक कर दिया है।

प्रेम-दीपिका में कवि ने भागवत ही का आशय लेकर अपना ग्रन्थ रचा है। इस में तीन प्रसंग हैं—

१. श्रीकृष्ण की आज्ञा से उद्धव का गोपियों को ज्ञान सिखाने जाना (भा० अ० ४७)

२. बलदेव जी का गोकुल जाकर गोपियों का रमण करना (भा० अ० ६१)

३. सूर्यग्रहण के अवसर पर यादवों के साथ श्रीकृष्ण की कुरुक्षेत्रयात्रा। वहीं नंद और गोप गोपियों का भी आना (भा० अ० ८२)

परन्तु इन लीलाओं के समझने के लिये कृष्ण-लीला का

क्रम जानने की बड़ी आवश्यकता है। इससे संक्षेप रूप में यहां लिखा जाता है।

श्रीकृष्ण और बलराम ने कंस को मार कर उग्रसेन को गद्दी पर बैठाया और यह कहा कि हम यदुवंशी हैं, राजा ययाति के बरदान से यदुवंशी राजा नहीं हो सकते। हमने अपने अयोध्या के इतिहास में दिखलाया है कि इसी भारतवर्ष में यदुवंशी अनेक राजा हुये हैं। अस्तु हम यह मान लेंगे कि किसी कारण से श्रीकृष्ण ने मथुरा में राज करना स्वीकार न किया परन्तु राज दर्बार में बड़े प्रतापशाली रहे और सच पूछिये तो राजा ही थे। जब कंस मारा गया और दोनों भाइयों ने मथुरा में रह जाना उचित समझा तो नंद और गोपों को समझा बुझा कर अपने घर भेज दिया। यह घर कहां था ? प्रचलित कथा यह है कि ये लोग वृन्दाबन के रहने वाले थे। परन्तु आजकल जैसा कि हमने मथुरा में घूम घूम कर देखा है और सुना है नंद और दोनों भाइयों को अक्रूर नंद गांव से लाये थे, जो गोवर्धन से उत्तर छः मील की दूरी पर है। बृन्दाबन मथुरा से केवल ६ मील यमुना तट पर है और सैकड़ों स्त्री-पुरुष वहां से नित्य मथुरा आते हैं।

नंद और गोपों के लौट जाने पर यह अवश्य विचारा गया होगा कि राजसभा में ब्रज के निरक्षर गोप बने रहने से काम न चलेगा और विद्या सीखने के लिये अवन्तिपुर के रहने वाले सान्दीपनि के गुरुकुल में रहे। वहां से जब लौटे तब उन्हें गोप गोपियों की सुधि आई और उद्धव को नंद को समझाने

और गोपियों को ज्ञान सिखाने के लिये भेज दिया। उद्धव और गोपियों के प्रश्नों को लेकर अनेक गोपीभक्तों ने अपना रचना चातुर्य दिखाया है। इस विषय में एक विचित्र बात यह है कि जब गोपियों और उद्धव में वाद विवाद हो रहा था उसी समय "किसी गोपी ने एक भंवरे को फूल पर बैठते देख उसके मिस उद्धव से कहा" इत्यादि। यही भंवरा पीछे से उद्धव हो गया और गोपी उद्धव संबाद भ्रमर गीत बन गया। प्रेमदीपिका में उद्धव ही "मधिकुर" (मधुकर) हैं। इस विषय पर सब से पहला ग्रन्थ नंददास का भंवरगीत है। इसके कुछ दिन पीछे सूरदास का भ्रमर गीत रचा गया। प्रसिद्ध कवियों में से अक्षर अनन्य की प्रेम-दीपिका और सुख-सागर का भ्रमर गीत भी हमने Calcutta University Selections from Hindi Literature, Book VI, Part 2 में दिये हैं। अभी थोड़े दिन हुये हमारे शिष्यवर बाबू जगन्नाथदास रत्नकर ने उद्धव शतक रचा।

इस संबाद में प्रेम-मार्ग की उत्कृष्टता दिखाई गई है और ज्ञान-मार्ग उससे हीन बतलाया गया है। कहने वाले यहां तक कहते हैं कि उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा घमण्ड था। वह घमण्ड गोपियों को देख कर चूर हो गया।

यहां यह बात विचारणीय है कि श्रीकृष्ण भगवान् ने भगवद्गीता में ज्ञान-मार्ग का ही उपदेश दिया है। उसी ज्ञान मार्ग को गोपियों के मुख से हीन बतलाना गोपीभक्तों ही की समझ में आ सकता है।

प्रेमदीपिका के दूसरे खण्ड में श्रीमद्भागवत (दशम स्कन्ध, अध्याय ६५) के आधार पर बलदेवजी का नंद-गोकुल जाना लिखा है। यहां वृन्दावन का नाम नहीं है। हमारे मत में तो यह आज-कल का न गोकुल है न वृन्दावन। यह नंदगांव है। बलदेव जी ने ब्रज में जा कर गोपियों के साथ रास लीला की।

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन्॥
पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगंधवायुना।
यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः॥
वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात्।
पतंती तद्वनं सर्वं स्वगंधेनाध्यवासयत्॥
तं गंधं मधुधारया वायुनोपहृतं बलः।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समीपपौ॥

इसका अनुवाद करना व्यर्थ है। लेकिन इतनी विशेषता है कि श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ रास-लीला की और किसी मादक वस्तु का प्रयोग नहीं किया, बलदेव जी ने वारुणी पी और पिलाई जिस से रास का आनन्द बढ़ गया होगा। यहां बड़े छोटे का विचार नहीं था क्योंकि गोपी-भक्त मर्य्यादा का ढकोसला नहीं मानते। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान थे। बलदेव जी अंशावतार थे। जिन गोपियों ने स्वयं भगवान् के साथ रास किया, उन्हें उनके अंशावतार के साथ रास करने में क्या आपत्ति हो सकती थी।

तीसरे खण्ड में सूर्यग्रहण के अवसर पर श्रीकृष्ण की स्यमंतक

तीर्थ की यात्रा है। श्रीकृष्णचन्द्र अपनी रानियों के साथ द्वारका से आये और नन्द आदि गोप और गोपियां ब्रज से आईं।

यह प्रसंग श्रीमद्भागवत के अध्याय ८२ से लिया गया है। इसमें श्रीकृष्ण ने गोपियों की विरह-वेदना मिटाई। अक्षर-अनन्य ने सत्यभामा के मुख से गोपियों को साधारणतः और राधा को विशेष रूप से बड़ी फटकार बताई है और यहां तक कहलाया है कि तुमको श्रीकृष्ण से इतना प्रेम था तो उनके वियोग में मर क्यों न गईं। इस पर श्रीकृष्ण की आल्हादिनी शक्ति ने ग्लानि के मारे अपने प्राण दे दिये। ब्रजवासी उनका अन्त्येष्ठि कर्म करके रोते पीटते ब्रज को चले गये।

अब प्रश्न यह उठता है कि गोपियां कौन थीं।

साधारण बोल चाल में गोप की स्त्री को गोपी कहते हैं। परन्तु आज-कल ब्रजमंडल में गोप नाम की कोई जाति नहीं है। दूध दही का व्यवसाय करने वाले ग्वाल बंश कहलाते हैं। बरसाने आदि में एक बस्ती गोसाइयों की है। यह लोग अपने को ब्राह्मण बतलाते और गृहस्थ हैं। इनकी स्त्रियां यात्रियों का आंचल पकड़ लेती हैं और कहती हैं "हमारो दान दयेजा"। हम गोपी हैं। श्रीकृष्णचन्द्र तो गोपियों से दान मांगा करते थे। यह स्त्रियां यात्रियों से क्यों दान माँगती हैं? हमारी समझ में नहीं आता।

जान पड़ता है कि श्रीकृष्ण चन्द्र के समय के गोप एक प्रकार के वैश्य थे जो गायें पालते थे और दूध दही नैनू (नवनीत) का व्यवसाय करते थे।

हम कह चुके हैं कि गोपियां साधारणतः सब पतिवाली थीं* । उनके श्रीकृष्ण के साथ इतने प्रेम का कोई विशेष कारण होना चाहिये ।

१—एक तो श्रीकृष्ण की मनमोहनी मूर्त्ति थी जिस पर मुग्ध होकर उन्होंने पतिव्रत धर्म को तिलांजलि देदी । इस विषय में मत भेद नहीं है । गोस्वामी तुलसी दास जी ने कहा है :—

"बलि गुरु तज्यो कंत ब्रजबनितनि भे जग मंगलकारी ।"

इस भाव को भारतेन्दु जी ने दो घनाक्षरियों में यों दिखलाया है—

एक बेर नैननि भरि देखै जाहि मोहै तौन,
मानो ब्रज गांव ठाँव ठाँव में कहर है ।
संग लागी डोलैं कोऊ घर ही कराहैं परी,
छूट्यो खान पान रैन चैन बन घर है ।
हरीचन्द जहां सुनौ तहां चरचा है यही,
एक प्रेम डोर नाथ्यो सगरो सहर है ।
यामें न सँदेह कछू दैया हौं पुकारि कहौं,
भैया की सौं मैयारी कन्हैया जादूगर है ॥१॥
जौन गली चलै तहां मोहै नर नारी सब,
भीरन के मारे बन्द होइ जात राह है ।
जकी सी थकी सी सबै इत उत ठाढ़ी रहैं,
घायल सी घूमैं केती किये मन चाह है ।

* श्रीमद्भागवत के अनुसार चीरहरणलीला की गोपियां कुमारियां थीं और श्रीकृष्ण को बर पाने के लिये कात्यायनी का व्रत करती थीं ।

हरीचन्द जासों जोई कहै तोन सोई करै,
बरबस तजै सब पतिव्रतराह है।
यामें न संदेह कछू सहजहिं मोहै मन,
सांवरो सलोनों जानै टोना खामखाह है।

यह प्रेम परस्पर था। श्री कृष्ण जी जब छोटे थे तब गोपियों की मटकियां फोड़ा करते थे। जब कुछ बड़े हुये तो उनके घर घुस जाते थे। ब्रज में होली के दिनों में कुछ गीत गाये जाते हैं, जिन्हें रसिया कहते हैं। हम पाठकों के विनोदार्थ एक रसिया लिखते हैं, जिसका ग्रामोफोन रेकार्ड Gramophone Record भी बन गया है:—

कैसे आयो मेरी बाखरिया, बतइदे कान्हा मोय।
झांकै रोजु पराये घर में बुद्धि गई तेरी खोय॥
देखि सांवरी सूरति तेरी दरद लगत है मोय।
जानि लेइगो बलमा मेरो रह्यो कोठे में सोय॥
ऐसी मार परै तेरे तन पै, राखें बेंत भिजोय।
नन्द बबा से तेरे कारण मुफति लड़ाई होय॥
बिना भक्ति गोपाल लाल की मुकति कहां ते होय।

जिस गोपी को श्रीकृष्ण जी से इतना प्रेम हो, वह उन्हें अपने घर आप बुलायेगी और उसका ऐसा कहना "मन भावे मुड़िया हिलावै" की कहावत को चरितार्थ करता है।

परन्तु इससे कुछ लोगों को सँतोष नहीं होता। हम लोग आर्य हैं, आर्यों में पतिव्रत-धर्म की बड़ी महिमा है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है:—

अनुसुइया बचन

वृद्ध रोग बस जड़ धनहीना। अंध, बधिर, क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किये अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धरम एक ब्रतनेमा। काय बचन मन पतिपदप्रेमा॥

इससे हमको बाध्य हो कर पूर्व जन्म का संस्कार मानना पड़ता है। इस संस्कार के विषय में गोपीभक्तों के अनेक मत हैं। हम इन में से कुछ नीचे लिखते हैं :—

१. गोपियां वेद की श्रुतियां थीं। अक्षर अनन्य ने भी एक स्थान पर कहा है:—

श्रीरुकमिनि के पां परीं उमँग सकल ब्रजनारि।
हरि तें अतिहित श्रुति ऋचा, पूरन शक्ति विचार॥

यहां गोपियां वेद की ऋचायें है और श्रीरुक्मिणी जी पूर्ण शक्ति हैं। कल्याण के कृष्णांक पृष्ट १९० में पद्मपुराण का यह श्लोक है—

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्थकाः।
देवकन्थाश्च राजेन्द्र न मानुष्यः कदाचन॥

श्रीनाथद्वारे से प्रकाशित संप्रदाय प्रदीप में लिखा है कि श्रुति रूपी गोपिकाओं की कथा वृहद बामन पुराण में है। अथर्वणी श्रुति भी है।

ब्रजस्त्री जन संभूतिः श्रुतिभ्यो ब्रह्मसंगता।

आश्चर्य यह है कि वेद की ऋचायें वेद ही के बताये ब्रह्मज्ञान की निन्दा करती हैं।

गोपियों को बिलखती छोड़ कर हरि के चले जाने से रूपक रूप से यह अवश्य सिद्ध होता कि श्री कृष्णावतार ने वेदान्त (उपनिषद्) को अपने भक्तों के लिये अपर्याप्त समझा । वेदान्त का प्रसिद्ध सिद्धान्त है:—

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः

वेदाहमेत पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय ।।

और इसी से प्रेम मार्ग की उत्कृष्टता दिखाई जो लौकिक रूप में अश्लीलता के आवरण से ढक गया।

२. एक भागवती पंडित ने प्रसंगवश यह कह डाला कि दण्डक बन के महर्षि लोग श्रीरघुनाथ जी के सौन्दर्य पर मोहित हो कर उनसे प्रेमालिङ्गन की अभिलाषा प्रकट करने लगे। इस पर श्रीरघुनाथ जी ने कहा कि श्रीकृष्णावतार में तुम लोग गोपी रूप धारण करके हम से मिलो। कल्याण के कृष्णाङ्क पृष्ट ७ से ध्वनित है कि गोपीजन तथा अक्रूर आदि सब हरि-भक्त साधू ही थे।

यहां भी वही बात सिद्ध होती है कि महर्षि लोग जो ज्ञान मार्ग के अनुगामी थे, प्रेममार्ग को उससे बढ़ कर मानने लगे।

३. संप्रदाय प्रदीप में लिखा है कि अग्निकुमारों को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचंद्र ने बरदान से द्वापर में गोपिका भाव प्राप्त होकर भजनानन्द का फल प्राप्त हुआ।

४. यह भी रामावतार से सम्बंध रखता है। कहते हैं कि

जब श्रीरघुनाथ जी जनक की फुलवारी देखने गये और श्रीसीता जी भी अपनी कई हज़ार सखियों के साथ गिरिजा पूजने आईं तो उनकी सखियां भी श्रीरघुनाथजी के प्रेम-पाश में बंध गईं। श्रीरघुनाथजी ने उनसे कहा कि हमारा यह अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम का है। तुम हम से मिलना चाहती हो तो हमारे दूसरे अवतार में तुम गोपी बन जाओ। इस बात को हमारे मित्र स्वर्गवासी पं० प्रयाग नारायण मिश्र ने निम्नलिखित पद में दिखलाया है :—

सखी री द्वापर के कै द्योस।

जनक नगर ते गोकुल केहि दिसि लागत है कै कोस।
गई हुतो निसि भूपतिमहलन देखन सियभांवरी,
लालच मुख पानी भरि आयो देखि सुरत सांवरी।
निठुर कुँवर अतिशय अभिमानी देख्यो दृग न उठाय,
फिरि फिरि आइ गई यद्यपि मैं अंग सों अंग अभिराय।
कहा कहौं वे पीठ खुजावत मैं निकसी बगल्याय,
ता कंकन मो फंसी कंचुकी बहुत भई हंसवाय।
जानि लई जनु मो मन की गति बलिहारी चतुराय,
सब सों आंख बचाय कह्यो मोंहि सिर झुकाय मुसक्याय।
अबही अपन भेष मरयादा प्रीति सधि सकत नाहिं,
हमरो तुम्हरो होइ संमिलन द्वापर गोकुल माहिं।
ताते मैं पूछत मेरी आली गोकुल देहु बताय,
हम गोकुल कहँ पहुँच न पाई द्वापर बीति न जाय।

(प्रयाग नारायण मिश्र के राघवगीत से उद्धृत)

इनमें कौनसी बात सच है इसे गोपी-भक्त ही बता सकेंगे।

प्रेम-मार्ग

अब थोड़ी सी प्रेम मार्ग की झलक दिखा कर इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। उर्दू भाषा का एक प्रसिद्ध वाक्य है—

عشق کیا شے هے کسي کامل سے پوچھا چاهئے

'इश्क क्या शै है किसी कामिल से पूछा चाहिये'

'प्रेम क्या है किसी सिद्ध से पूछना चाहिये'

आठ वर्ष हुए हमने प्रयाग विश्वविद्यालय से कबीर पर एक अंग्रेजी लेख पढ़ा था। उसके उपसंहार में सूफ़ी सम्प्रदाय का कुछ विवरण दिया हुआ है। उसे जिज्ञासु पाठक देख सकते हैं। हमने प्रेममार्ग के सिद्ध देखे हैं? आजकल इस मार्ग के सब से बड़े महात्मा अयोध्या के श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद थे जिनका दो वर्ष हुए ९० वर्ष की आयु में साकेतवास हुआ। इनका उपनाम 'सीता किंकरी रूपकला' था, और ये अंग्रेज़ी, फ़ारसी, संस्कृत के विद्वान थे। गुरु नानक ने भी एक पद में कहा है—

"भूत भविष नाहीं तुम जैसे मेरे प्रीतम प्रानअधारा,
हरि के नाम रती सोहागिनि नानक राम भतारा।"

अंग्रेज़ जाति के प्रसिद्ध विद्वान (Cardinal Newman) कार्डिनल न्यूमैन ने कहा है कि यदि तुम ईश्वर से मिलना चाहते हो तो स्त्री बन जाओ। स्त्रियों का चित्त कोमल होता है। ईश्वर के साथ प्रेम अध्यात्मिक प्रेम (imaginary love) से मिलता जुलता है। संयोग हो जाने पर यह प्रेम नष्ट नहीं हो जाता तो भी इसकी मात्रा बहुत घट जाती है। इस प्रेम की पराकाष्ठा यह है कि दिन रात प्रियतम से मिलने के लिये व्याकुल रहे। प्रेम उसे

अनुदिन प्रियतम के सन्निकट लाता है, परन्तु प्रियतम से भेंट नहीं होती। इसका एक उदाहरण गणित शास्त्र में है। अतिपर्वलय Hyperhola की वक्र रेखा (Curve) के बराबर एक सीधी रेखा रहती है जिसे असिंप्टोट (Asymptote) कहते हैं। यह रेखा अतिपर्वलय के सन्निकट होती जाती है परन्तु कभी नहीं मिलती। यही दशा ईश्वर के प्रेमी की है। ईश्वर से मिलने पर वह ईश्वर ही हो जाता है, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—

'सेवत तुमहि तुमहि ह्वै जाई'

ईश्वर, जैसा गोस्वामी जी का दूसरा वाक्य है—

'राम पुनीत प्रेम अनुगामी' है।

स्त्रीरूप धारण करके ईश्वर के साथ रास विलास करना कामियों की कल्पना है। पुनीत प्रेम नहीं हो सकता।

अछिर-अनिन्न (अक्षर अनन्य)

दतिया के महाराज दलपतराव बड़े वीर और मुगल सम्राट औरंगज़ेब के बड़े ख़ैरख़्वाह थे। उनके पिता महाराज शुभकरनजी ने मुगल साम्राज्य की बड़ी सेवा की थी और उनके मरने पर औरंगज़ेब ने बड़ा शोक प्रकाश किया और उनके उत्तराधिकारी महाराज दलपत राव को पंजहज़ारी का पद दिया। दलपत राव ने सन् १६८३ से १७०७ तक राज किया। उनके ५ कुँवर थे। पहिले कुँवर महराज रामचन्द्र उनके उत्तराधिकारी हुये और दूसरे कुँवर पृथिवीसिंह को, जिन्हें अक्षर अनन्य अपने ज्ञान योग में पृथीचन्दराय कहता है, स्योंढा की जागीर मिली। अक्षर अनन्य जो कविता में अपना नाम अछिर, अच्छिर, अछिर अनिन्न और अनिन्न लिखते हैं जाति के कायस्थ, इन्हीं के गुरु थे। यहां एक

बात लिखने योग्य यह है कि बुन्देलखण्ड में कायस्थों और क्षत्रियों का पद बराबर है। जनश्रुति यह है कि अक्षर एक बार कुंवर पृथीचंद से रुष्ट हो कर बन को चले गये और एक पेड़ का सहारा लेकर पांव फैला कर बैठ गये। पृथीचंद उनके मनाने को निकले, और पेड़ के पास पहुँचे तो अक्षर अनन्य ने उनका आदर न किया। इस पर कुंवर पृथीचन्द ने व्यंग बचन कहा :—

"पाँव पसारा कब से ?"

अक्षरअनन्य ने उत्तर दिया :—

"हाथ समेटा जब से"

पृथीचन्द अपने गुरु को मना कर लौटा ले गये। मिश्र-बन्धुओं ने इनका जन्म-काल संबत् १७०१ और कविता काल संवत् १७३५ लिखा है। ये निबृत्ति मार्ग के साधू थे। इन्होंने धर्म सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ रचे। उनमें से ज्ञानयोग और राजयोग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किये हैं। मिश्रबन्धुओं ने इनके रचे इतने ग्रन्थ लिखे हैं—१. सिद्धान्त-बोध, २. ज्ञान-योग, ३. हरसम्बाद भाषा, ४. योग शास्त्र स्वरोदय, ५. अनन्य योग, ६. राज योग, ७. अनन्य की कविता, ८. दैवशक्ति पचीसी (शक्ति पचीसी, अनन्य पचीसी), १०. प्रेमदीपिका, ११. उत्तम चरित्र (श्री दुर्गाभाषा), १२. अनुभव तरंग, १३. ज्ञान-बोध, १४. श्री सरस-मंजावली, १५. ब्रह्मज्ञान, १६. ज्ञान पचासा, १७. भवानी स्तोत्र, १८. वैराग्य तरंग।

इनके अतिरिक्त हमारे पास सिद्धान्त जोग है। इनकी कविता से इनकी विद्वत्ता और इनका धर्म-विषयक ज्ञान पद-पद पर झलकता है। प्रेम दीपिका में गोपियों के बचन और भ्रमर गीतों के वाक्यों से कहीं बढ़े चढ़े हैं।

जो प्रति हम शुद्ध (अथवा अशुद्ध) करके छपवा कर पाठकों को निवेदन करते हैं, वह विक्रम संवत् १९०९ की लिखी हुई है। लेखक महाशय को न छन्दों का ज्ञान था, न अर्थ समझते थे। ग्रन्थ पौने तीन सौ वर्ष पहिले की बुन्देलखण्डी बोली में लिखा हुआ है। इससे पाठकगण दोषारोपण से पहिले पुरानी बुन्देलखण्डी समझने का प्रयत्न करें। हमने बुन्देलखण्ड में बंदोबस्त का काम किया है। जहां तक हमारी समझ में आया हमने पाठ शुद्ध कर दिया है। जहां हम नहीं समझे वहां मक्षिका स्थाने मक्षिका लिख दी है। पाठ मिलाने के लिये दूसरी प्रति प्राप्त करने में हमारा प्रयत्न सफल न हुआ। हमारी अवस्था ७८ वर्ष की है। कई महीने से आंखें भी कुछ कह रही हैं। आशा है कि सहृदय पाठकगण इस ग्रन्थ के दोष निकालने में इन बातों का विचार रक्खेंगे।

मुट्ठीगंज, प्रयाग
अगहन सुदी ५, स० १९३५ } श्री अवधवासी सीताराम

❀ सिद्धिश्रीगणेशायनमः ❀

श्रीकृष्णायनमः

प्रेमदीपिका

कवित्त *

जाकी शक्ति पाइ ब्रह्मा विष्णु औ महेश रवै,
जाकी शक्ति पाइ शेष धरनो धरत है।
जाकी शक्ति पाइ अवतार करतूत करै,
जाकी शक्ति पाइ भानु तम को हरत है।
जाकी शक्ति पाइ शारदाहु गणपति गुणी,
जाकी शक्ति पाइ जक्त जीवत मरत है।
अच्छिरअनिंन आन अमर-उपास छांड़ि,
ताही आदिशक्ति को प्रणाम ही करत है ॥१॥

दोहा

कर प्रणाम श्रीमातु को, ग्यान सुमति उर पाय।
प्रेमदीपिका हरिकथा, कहौं प्रेम समुझाय ॥२॥

कुण्डलिया

माधौजू इक दिन कहो, मधिकुर† सों सतिभाव।
गोपो-गोप-प्रबोध कौं, तुम ब्रजमण्डल जाव॥

* कवित्त = घनाक्षरी † मधुकर = यहां उद्धव।

तुम ब्रजमण्डल जाव, प्रेम अतिही उन कीन्हों।
जब तैं भयो बिछोह, सोध हम कबहुँ न लीन्हों॥
तुम मम मति दरसाइ हर्यो दुखसिंधु अगाधौ।
कहियो सब सों यहै दूर तुम तें नहिं माधौ॥३॥
विषया-मद-माती त्रिया, काम-केलि-आसक्त।
सुन्दर पुरुष विचारि कै करी हमारी भक्त॥
करी हमारी भक्त नंदसुत गुन-सुखदायक।
तीन मुक्ति हम दीन नहीं चौथी कहँ लायक॥
तातें तुम परवीन जाइ दीजो निज सिषया।
कृष्ण निरंजन देव नहीं जानौ नर-विषया॥४॥
विषय-वासना त्रियन की करियो मन ते दूर।
शुद्ध ब्रह्म दरसाय कै रहौ सर्व भरपूर॥
रहौ सर्व भरपूर तासु उपदेशन कीजो।
मम सेवा फल जान यहै उनको सिष दीजो॥
ग्यान-जोग निज बोध मिटै कर्म के उपासना।
विरह मिटै सुख होय मिटै सब विषय-बासना॥५॥
श्रीवृन्दा जग-मात है वृन्दावन की देवि।
करियो जाइ प्रनाम मम चरन-कमल-रजसेवि॥
चरन-कमल-रज-सेवि देवि ब्रज की रच्छिपाला।
वृन्दावन अति सघन जहां जग-जननि-दिवाला* ॥
करियो पूजा जाय जबै पूजै सुखकंदा।

* देवालय

जदिन भाग मम होइ तदिन परसो श्रीवृन्दा ॥६॥
आयसु दै सुख पाइ इमि आपु मुकुट धर मत्थ।
अपनाई जोरो रुचिर पहिरायो अप-हत्थ॥
पहिरायो-अप-हत्थ दिये आवध* जु मँगाइक।
खासो रथ सजवाय बोलि पठये यदुनायक॥
दिनमनि सम निज जोति मरुत गति अती उजायस।
तब पां परि मिलि भेंटि चले ऊधौ लै आयस ॥७॥
हरि-प्रीतम अति आतुरे चले तुरत रथ जोत।
नंद-गांव के गेंउड़े, पहुँचें संध्या होत॥
पहुँचे संध्या होत छयो गोरेनु वितानं।
लखे न काहू जात गये व्रजराज-निधानं॥
मिली जसोधा रोइ मनौ सुत पाइ पुनीतम।
भेंटे नंद उर लाय पाइ प्यारे हरि प्रीतम ॥८॥
पूजा करी, जेंवाइ करि पारे पलँग सुछंद।
कुसल छेम वलराम की पूंछत रोवत नंद॥
पूछत रोवत नंद सुनौ ऊधो बड़ भागी।
नीके हैं हरि राम, हमहिं उनकी रट लागी॥
निरमोही उन तुल्य अछिर नहिं देख्यो दूजा।
पिघलत है पाषान जदपि कीजत है पूजा ॥९॥
हम तो हरि श्रीराम जू सेये देव समान।
मानस कर जाने नहीं हमैं तुम्हारी आन॥

*आयुधचन्द ने भी आयुध को आवध लिखा है; वजे आवधं संभरे अद्ध कोसं।

हमैं तुम्हारी आन करी बिधि सौं नित पूजा।
ज्यों फनिमनि सिरमौर और जाने नहिं दूजा॥
तिहि बिछुरे कहि अछिर कहौ कैसे मन दुमतो।
दीन मीन जलहीन कीन ऐसी हरि हम तो॥१०॥
कबहूँ या ब्रजबास की खबर करत कै नाहिं।
विविधि भांति क्रीड़ा करी उन ब्रजमण्डल मांहिं॥
उन ब्रजमंडल माहिं सुगुन मुख जात न भाषे।
हम सबहीं बहु बार विविधि संकट ते राखे॥
तेई गुनगन गाइ अछिर जीवत हम अबहूँ।
ते मनमोहन राम, मधुप, मिलि हैं अब कबहूं॥११॥
जसुधा को बहु सुख दिये करि करि बाल विनोद।
ते अबहूँ रस-बस भये आप करैं उत मोद॥
आप करैं उत मोद महा मोहन निरमोही।
जहँ ते मिलत न सोध गुपित नगरी तहँ टोही॥
यह कहि रोये नन्द अछिर फाटत नहिं बसुधा।
नैन नीर, कुच छीर श्रवहिं अनुरागिन जसुधा॥१२॥

उद्धव बचन

देखौ ऐसे प्रेम अति ऊधौ अचरजु कीन।
नंद जसोधा बोध कै बोले बचन प्रवीन॥
बोले बचन प्रवीन सुनौ ब्रजराज सभागे।
सकल सिरोमनि भक्ति, जक्तपति सों अनुरागे॥
जक्तपिता जगदीस भयो जिनते जग लेखौ।

तिन सों पूरन प्रेम आजु तुम्हरै हम देखौ ॥१३॥
तातें वे श्रीकृष्ण जू तुम तें नाहीं दूर।
पूरन प्रेम-प्रताप तें रहैं हृदै भरपूर॥
रहै हृदै भरपूर मूल ततग्यान* बिचारो।
व्यापि रह्यो सब मांहि नाम अद्वैत निहारो॥
तत्त† मित्त पित-मात नहीं उनके ये बातें।
भक्ति-हेत कछु काल बसे तुम्हरे गृह तातें ॥१४॥
को काको माता पिता, को काको सुत होय।
आतम एक अनेक है ज्यों घट घट ससि सोय॥
ज्यों घट घट ससि सोय, ब्रह्म पूरन इमि जानौं।
तव तन आतम-भाव नहीं माता भ्रम मानौं॥
रोइ गाइ कहि लेव वृथा मद मोह न छाकौ।
ग्यान-मोद में रहौ कहौ जग में को काकौ ॥१५॥
इहि विधि पर्म प्रवीन अलि हरो महरि को भर्म।
पुत्र जान ममता कहो, दरसायो मति पर्म॥
दरसायो मति पर्म रात बीती इन बातन।
उठीं सकल ब्रजनार प्रेम बूड़ी रस गातन॥
पुलक नैन करि सुरति करी लीला हरि जिहि विधि।
दधि भावै गावै ति सुनत उमगे अलि इहि विधि ॥१६॥
पुनि अलि चलि जमुनहि गये गोपी निकसीं बार।
मनि-मानिक बानिक सुरथ देखि नन्द के द्वार॥

---

* ततग्यान = तत्वज्ञान † तत्त = तात

देखि नन्द के द्वार भई सब जुरके ठाढ़ी।
लागीं करन विचार प्रेम करुनारस बाढ़ो॥
फिर आयो अक्रूर गयो हतकै हम को सुनि।
महा मुगदरिय सखी कहा करि है अब कै पुनि॥१७॥
ऐसी बातें सब कहैं नैनन नीर बहाय।
जमुना तें आवत सुभग देखे ऊधवराय॥
देखे ऊधवराय कहैं नागरि यह को है?
हरि कैसी उनहार मधुर मूरति मन मोहै॥
चलत हते अलि कान्ह, डगैं धारै धर तैसी।
है उनहीं को सखा और का में गति ऐसी॥१८॥
तौं लौं ऊधो आइगे सब को किये प्रनाम।
ग्यानदृष्टि हरि-भावतिन जानौ तिनको नाम॥
जानौ तिनको नाम रिचा बेदन की चातुर।
महर-महल एकंत सु लै बैठीं त्रिय आतुर॥
मधिकुर जोग सँदेस कहन लागे मुख जौलों।
उर अंतर गति जान बाम बोली उठ तौलों॥१९॥

गोपी-बचन

ऊधौ हम जानत तुम्हैं, हौ हरि केर खवास।
बोध करन के कारने पठये हैं हम पास॥
पठये हैं हम पास सु तौ तुम आप बिचारौ।
नीर बिना नहिं जियै मीन पय-सागर डारौ॥
जौ मन बँध्यो सनेह तिन्है करि है को सूधो।

उठौ अग्नि को अंग अग्नि सियरो है ऊधो ।।२०।।
ऊधो जे नर नारि नित पगे प्रेम-अनुराग।
तिन को बोधन बचन ते हिलन मिलन बड़ भाग ।।
हिलन मिलन बड़ भाग बुद्धि तब लगत ठिकाने।
और तत्व गुन ग्यान सहित आतम सुख सानै ।।
कह जानौ तुम भेद कहा कहिये अलि सूधो।
प्यासे सों कहि बेद होत संतोष न ऊधौ ।।२१।।
ऊधो हम श्रीकृष्ण को अरपे तन मन प्रान।
वे मृग मीतहि बधिक ज्यों कपटी कढ़े निदान ।।
कपटी कढ़े निदान चलत कछु बात न सूझिय।
हम अंधी भई रोइ चलत मग बात न बूझिय ।।
अछिर न अच्छो लहत घाव पूरन मध मद्धव।
करि हमरी यह दसा गये माधव सुनि ऊधव ।।२२।।
ऊधो हम मनभावते चलत न देखे नैन।
भवनहि बैठे गवन के सुने ठोलिया बैन ।।
सुनै ठोलिया बैन रहीं रोवत हम सबरी।
गति उठि भोर किसोर नहीं पाई हम खबरी ।।
सुनि रोहिनि कौ रुदन भौन धाई तिर सूधव।
सुनत टूट गइ आस पास गिर गिर गई ऊधव ।।२३।।
ऊधो हरि रथ पर चढ़े हम रोई बिलखाइ।
घोरन के आगे गिरीं मारग में मुरझाइ ।।
मारग में मुरझाइ नेक उन पीर न जानी।

रथ कनाइ दै हांक गये अति गरब गुमानी ॥
फिर चितये न कठोर और कहिये कह सूधो।
कोटि बधिक ते अधिक कृष्ण कपटी सुन ऊधो ॥२४॥
ऊधो हरि ऐसी करी जैसी करत न कोइ।
नाना लाड़ लड़ाइ के छांड़ गये अरि होइ॥
छांड़ गये अरि होइ हुकुम दीन्हो अक्रूरहि।
मोहिं न पावहिं बाम हांक रथ ऐस जरूरहि॥
यों मुरदा कर छांड़ मनौ अति बैर विरुधो।
देखौ हित के लछन कहा कहिये हम ऊधो ॥२५॥
ऊधो श्रीहरि राम को खबरि कहौ अब आप।
वे ज्यों हैं त्यों आप को हमरे उनको जाप॥
हमरे उनको जाप प्रीति ज्यों चन्द्र चकोरहिं।
जल झुक दीप पतंग अंग एकै हित जोरहि॥
जो जानै सो करै नहीं हमरे कछु कूधौ।
अपनी निबहै योर जोर हित कै सुन ऊधौ ॥२६॥
ऊधौ जू हम जानहीं निहिचै कै यह रीति।
ज्यों अतिहीं तरुनी करैं त्यों न पुरुष कै प्रीति॥
त्यों न पुरुष कै प्रीति लगन स्वारथ लौ राखैं।
ज्यों अलि आप सनेह कपट करकै रस चाखैं॥
पुनि वहि पुहुपहि छांड़ि फेर मन करहि न सूधो।
राम कृष्ण को हेत इतौ देखो हम ऊधो ॥२७॥
ऊधो लंपट पुरुष की नहिं काहू सों प्रीति।

जहँ पायो खायो तहां ज्यों भिच्छुक की रीति ॥
ज्यों भिच्छुक की रीति प्रीति कहि जे बहु जांचे।
त्यों हरि बहु इत करी वहां बहुतिन रँग रांचे ॥
तिनहि न कौन प्रमान नहीं जिनको मन सूधो।
प्रीति निबाहन ओर धन्य सुपरस सुनि ऊधो ॥२८॥
ऊधो तुम सांची कहौ मनमोहन की रीति।
कबहूँ इत फिरि आइहैं जान हमारी प्रीति ॥
जान हमारी प्रीति विथा मेटहिंगे तनकी।
हम तलफत उन हेत रहत कैसहुँ ना हुलकी ॥
यहि विचार तजि कपट कहौ करि के मन सूधो।
करुनासिन्धु कहाय करत करुना कत ऊधो ॥२९॥
ऐसें कपटी की भटू कबहुँ न कहिये बात।
का कहिये यहि प्रेम बस निमुख निमुख रहि जात ॥
निमुख निमुख रहि जात गाढ़ि रसनै गुन रटकी।
छोर न छूटत कुटिल तरक बहु बारन झटकी ॥
जीभ न बैरिन भई अली करिये मति कैसे।
तजत न हठ हरि नाम जदपि देखत दुख ऐसे ॥३०॥
आसा ही आसा सखी मन नहिं तजत सनेह।
दुबिधा में लुबिधा बधौ उत हरि इत प्रिय देह ॥
उत हरि इत प्रिय देह नहीं दो मैं कछु छूटत।
महा बिरह संताप पाय हिरदौ नहिं फूटत ॥
करि आवन की आस दुःख पिव पीव-प्रवासा।

तातें भले निरास जान सोकासन आसा ॥३१॥
जानत हैं हमहूँ सखी सबतें सुखी निरास।
जैसे गनिका पिंगला तजौ पुरुष को पास॥
तजौ पुरुष को पास तरक ऐसे कर आना।
तजै विरहसंताप पाइ निज पद निर्वाना॥
यहि निहिचै मन जान तऊ मनसा नहि मानत।
करि करि हरिगुन सुरति नहीं जानै पर जानत ॥३२॥
उनके गुन सांचे सखी महामोह के जार।
जिनहि नेक श्रवनन सुनत पुरुष तजत घर द्वार॥
पुरुष तजत घर द्वार फिरत बन बन गुन गावत।
श्री सौनिक सनकादि दत्त नारद मुनि भावत॥
बालक ध्रुव प्रहलाद कढ़े बांधे गुन-गुन के।
हमरे हित की कहा सबै सांचे हित उनके ॥३३॥
सजनी उनके गुन सुनत को न होइ बस आइ।
सुरपुर तें देवांगना उतरीतीं अकुलाइ॥
उतरीतीं अकुलाइ सुनत रस मोह महा री।
*सिव ह्व आये वाम वाम की बात कहा री॥

* श्री बृन्दाबन में श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी जी की कुटी से थोड़ी दूर पर गोपेश्वर महादेव का मन्दिर है। प्रसिद्ध है कि जब श्रीकृष्ण ने शरत्पूनों की रात को यमुना तट पर रासलीला की और उनकी मुरली की मधुर ध्वनि कैलाश की कन्दराओं में घूमी तो शिव जी सब छोड़ छाड़ कर गोपी वेष धारण करके उसी रास में सम्मिलित हो गये। श्रीकृष्ण ने उनको पहिचान लिया और कहने लगे आइये गोपेश्वर जी स्वागत। तभी से शिव जी यहीं रहते हैं। (कल्याण, भाग ८ पृ० ६६१)

क्यों न परै मन मोह सुनत षट मासन रजनी ।
सुनि मुरली धुनि कान्ह क्यों न वस होवहिं सजनी ॥३४॥
दूजो को सखि संभु ते पूरन पुरुष अलेख ।
ते आये हरि रहस में धर भामिन को भेख ॥
धरि भामिन को भेख नाथ-कौतुक सब दरसे ।
जान सकुच हरिराय पायँ हर के तब परसे ॥
धर गोपेश्वर नाम करी विधि सों तिन पूजा ।
भये प्रेम बस संभु सखी कहिये को दूजा ॥३५॥
धोखे हो धोखे सखी बस्य भई हम आइ ।
ज्यों हिरनन के मन हरै बधिक बिसारी गाइ ॥
बधिक बिसारी गाइ कपट करके मन करपै ।
बसि कै मारत मुगद महा निर्दय हिय हरपै ॥
त्यों हमको हरि मोहि मार मग धौं कहि वोपै ।
कहिये कहा अनित्र भई कपटी बस धोपै ॥३६॥
बधिकौ तो सुरजन सखी दुरजन महा मुरार ।
वहि मारत जिय ना रहो यहि अधमर कर डार ॥
यहि अधमर कर डार मार सर बहुरि न काढ़ै ।
उसुसत ससित सरीर प्रेमपूरन दुख बाढ़ै ॥
यहि दुख अछिरअनित्र कोटि मरवे ते अधिकौ ।
कृष्ण कठोरहि सखी पाइ सकिहै नहिं बधिकौ ॥३७॥
आली कृष्णहि दोष नहिं हम कीनी अनरीत ।
अपनो पतिव्रतधर्म तजि करी कृष्ण सों प्रीत ॥

करी कृष्ण सों प्रीत सुनौ ताको फल पायो।
सपने सो सुख भयो जनम भरि को दुख छायो ॥
इहि अपने सिर दोष करै गत कर्म बिसाली।
हमको कृत्या* रूप भई मुरली वह आली ॥३८॥
मुरली वह पापिन सखी कौन जनम की सौत।
वहि हमको ऐसी करी जैसी कहूँ न होत ॥
जैसी कहूँ न होत सौत लागी क्रप† प्रानन।
आपुन कठिनहि काम करो हम कामक-बानन ॥
अबहू लौं कहि अछिर सुप्रभेदत सुर उरली।
कत विधिती हम पीर जो पै होती नहिं मुरली ॥३९॥
श्री माधौ की मूरली कब सुनि हैं हम कान।
जा सुन के रस बस भईं मन ते टरत न तान ॥
मन तें टरत न तान भयो अधिफरकौ जियरा।
ना यहि कढ़ै न रहै होत व्याकुल अति हियरा ॥
अछिर अच्छ तलफंत दुःख देखत चित चुरली।
अटक रही घट मांहि श्याम-मूरति अरु मुरली ॥४०॥
मधिकुर श्री ब्रजराजजू या ब्रजवास-निवास।
नाना विधि लीला करी हम सों रहस विलास ॥
हम सों रहस विलास आस कीनी पूरन मन।
कोटि विष्णुपद तुल्य कृष्ण कीनो वृन्दावन ॥

---

* एक देव जिसे बलिदान चढ़ाया जाता है।
† क्रप – कृपण दीन [?]

ऐसे सुःख दिखाइ फेर सुधि लीन न मधिकुर।
हम अति अधम अभाग अजहु जीवत हैं मधिकुर ॥४१॥
मधिकुर एक दिन स्याम सो सब सखियन को छांड़।
मोहि बाँह गहि लै चले गहवर वन हित माड़॥
गहवर वन हित माड़ तहां कंकर दरसे मग।
लीनी अंक उठाइ पौंछि पीतामर सों पग॥
नाना विध सुख दिये प्रेम पूरन दुख बधिकुर।
यौं हितकर हत गये हमहि माधव हो मधिकुर ॥४२॥
मधिकुर जू इक दिन हमैं लै चलिये उहि लोक।
जहां बसत गोपालजू जादव करे असोक॥
जादव करे असोक भई अविचल रजधानी।
सेवत सुर मुनि नृपति निकट श्रीरुकमिन रानी॥
देखैं वहि सुख नैन होइ हमरे उर सधिकुर।
प्राणनाथ व्रजनाथ कबहुँ मिलिहैं हे मधिकुर ॥४३॥
अब तौ हरि राजा भये राज-सिरन-सिरमौर।
रुकमिन सी रानी बरी गुनगरई सब ठौर॥
गुनगरई सब ठौर सदा तिन संग बिहारैं।
हम गंवार लघु जाति, कतहुँ तन ओर निहारैं॥
जबहिं हते इत ग्वाल हमहिं प्यारो ती तब तौं।
देख मलीन घिनाइँ मिलैं कैसे हरि अब तौं ॥४४॥
जो पै अब सब कुछ भयो तौ न टरै वह बान।
असुरन डर गोपालजू जिये हमारी आन॥

जिये हमारी आन जगत जानत ये बातैं।
कोकिल केसे बाल मिलै अपने पितु-मातैं॥
तजी जान पहिचान मधुप कहि आवत तो पै।
धृक ऐसो सुख तासु हितू देखै दुख जोपै॥४५॥
ऐसी मति हमरी भई प्राननाथ के ईठ।
जातें प्रीत विचार चित अब तुम होहु बसीठ॥
अब तुम होहु बसीठ जात आवत पुर रहेऊ।
उत की सुधि दै हमैं उहाँ हमरी जा कहेऊ॥
दिये रहौ आधार कहौ हित की गति जैसी।
हमरी प्रीति विचार आप आनौ उर ऐसी॥४६॥

अनिल बचन

इहि विधि कहि बातें त्रिया व्याकुल भईं सरीर।
रोइ रोइ गिर गिर परीं निचुर चले सब चीर॥
निचुर चले सब चीर महाआतुर अति रोईं।
कान्ह कान्ह कर रटैं प्रेम करुनारस भोईं॥
अछिर न कछु कहि जाइ भई तिनकी गति जिहि विधि।
करन लगे उठ बोध मधुप देखत गति इहि विधि॥४७॥

उद्धव बचन

पूरन भक्ति निहार हिय सुनहु सकल ब्रजनार।
जिन तन-मन-बच कर्म कर सुमिरे कृष्ण मुरार॥
सुमिरे कृष्ण मुरार पुरुष पूरन परमातम।

वे तुमते नहिं दूर जान उनही को आतम ॥
धरि उर ब्रह्मग्यान तजौ यह बिरह-बिसूरन ।
देखौ चित्त विचार ब्रह्म सब में भरपूरन ॥४८॥
ध्यावहु निज परमातमा जो ध्यावत जोगीस ।
हम में तुम में स्याम में सब में पूरन ईस ॥
सब में पूरन ईस विरह जासों छिन नाहीं ।
रहै सदा संयुक्त सबै उर अन्तर माहीं ॥
तज नर-नारी भाव विषय मन मांहि न ल्यावहु ।
सदा सकल सुखदान जान ईश्वर निज ध्यावहु ॥४९॥

अनिश्च बचन

तिनके बोधन को मधुप वचन कहेई यत्र ।
तौंलो इक भौंरा भ्रमत आइ गयो उहिं तत्र ॥
आइ गयो उहिं तत्र पाइ गोपिन संग बासहि ।
सनमुख आवत लख्यो चतुर बनितन तब ना सहि ॥
काकु-बचन कहि उठी महा करुना मन जिनके ।
हरि ऊधव पर ढारि लगी बरनन गुन तिनके ॥५०॥

गोपी बचन

रे भौंरा रसबावरे मनभावन के दूत ।
हमरे सनमुख विमुख अब तू नहिं आवहु धूत ॥
तू नहिं आवहु धूत तोहि देखत रुचि बाढ़ी ।
जदुकुलतिय कुच चूमि भई कुमकुम तुव डाढ़ी ॥

तोहि छिपत कहि अछिर लगन हमरे जिय दवरा ।
उनकौ जोग संदेस सौंप उनहीं कहँ भँवरा ॥५१॥
गावत का हतभाव तू जाइ द्वारका गाव ।
उनकी त्रिय अति चतुर हैं जानत गुन को भाव ॥
जानत गुन को भाव जिनैं मनमोहन मोहे ।
हमरी सुरत बिसार सुरत उनकी रस पोहे ॥
बाढ़ी विरह बिहाल वृथा कत हमहिं सतावत ।
रहु उनके गुन गाय सदा उनही ढिग गावत ॥५२॥
भौंरा तैं जानै कहा निज कर कै रसरीत ।
भ्रमत फिरत बहु कलिन में नहीं एक सों प्रीत ॥
नहीं एक सों प्रीत रीति तू सों कह जानै ।
ससि चकोर को भाव कहा कौवा पहिचानै ॥
जहाँ न एक सो नेह तहां कैसो रस बौरा ।
जहां बहु नाइक कान्ह मुगद तैसो तू भौंरा ॥५३॥
कपटी क्रूर कठोर अति तू रहु हम तें दूर ।
तू स्वारथ को मीत है रहु पाखंडन पूर ॥
रहु पाखंडन पूर मिलत हित सो नित फूलन ।
लै रस कस उड़ जात बहुर मारत सठ सूलन ॥
ताते कारो भयो कलंक न सो मति लपटी ।
ज्यों हमको कहि अछिर छोहु दै गयो हरि कपटी ॥५४॥
कारे कूर कुमारगी छू न हमार सरीर ।
तू तन मन पापी महा जानत नहिं पर पीर ॥

जानत नहिं पर पीर काट उर कंजन पीवत।
पुनि औरन पर जात ताहि फिर नेक न छीवत॥
आपुन हितहि बिगोइ देत दूखन मतवारे।
ज्यों हम तज भज गये मित्र कपटी हरि कारे॥५५॥

कारे तो ऐसे सखी आये सब घर घालि।
बानर मारन नहिं कह्यो मार्‌यो रघुबर बालि॥
मार्‌यो रघुबर बालि सत्य स्वारथ लौ डाटी।
आई करन विहार नाक ता त्रिय की काटी॥
त्यों निरदयी गोपाल करे मन विघ्न हमारे।
कहँ लौं कहिये सखी होत ऐसे सब कारे॥५६॥

कारे दोषी होत सखि महा पाप अवतंस।
छलि बावन बलिराज को कियो जु जग्य बिधंस॥
कियो जु जग्य बिधंस विष्णु ब्रह्मा छल मारी।
राज पाट सब मेटि विकल करिकै फिर जारी॥
त्यों छलिया गोपाल पतिब्रत मेट हमारे।
आखिर तज भज गये सखो दोषी ये कारे॥५७॥

अनिन्न बचन

सोरठा

यहि विधि काकु विसुद्ध, कहत अली सों अलिन मिस।
चकित चित्त हुअ उद्ध, जैसे फैली नीसती॥५८॥

अनिरुद्ध बचन

दोहा

ऊधव अति चित चकित ह्वै, तकित प्रेम अनुराग।
थकित बुद्धि सब सक्ति ह्वै, कहत बैन बड़ भाग ॥५९॥

ऊद्धव बचन

* मुरिल्ल छन्द

जग मोहन श्रीकृष्ण तुम्हारे कंत जू।
तिन को हौं लघुदास सनेही संत जू॥
पठयो है तुम पास सँदेस कहाइकै।
सो सँदेस हौं करत सुनो चित लाइकै ॥६०॥

श्रीकृष्ण संदेस

दोहा

हमहिं तुमहिं कछु भेद नहिं, देखौ ग्यान बिचार।
हम, तुम में ऐसे रमै, ज्यों सब माहिं विहार ॥६१॥
तुम सब हा मेरी कला, देखौ आपहिं आप।
आतमग्यान विचार कै तजौ विरह संताप ॥६२॥
विरह विषय मेरे विषय, तुम जनि जानहु बाम।
देखौ जोग समाधि धरि हौं नित रमता राम ॥६३॥

---

* मुरिल्ल छन्द—छन्द-प्रभाकर में नहीं है। यह २१ मात्रा का छन्द है और चान्द्रायण से मिलता जुलता है। चान्द्रायण छन्द में ११ मात्रा जगणान्त और १० मात्रा रगणान्त होना चाहिये। मुरिल्ल में यह क्रम नहीं है। (छन्द-प्रभाकर पृ० ५६)

जो तुम मोहि चाहत सदा, भावत नेक न दूर।
तौ देखै नर कमल* में जोग ध्यान भर पूर ॥६४॥

अभीर छन्द

सुनि त्रिय जोग सँदेस।
मिस मिस परम कलेस॥
पर बस चलत न काब।
दिय गद गद भर ज्वाब ॥६५॥

गोपी बचन

दण्डक छन्द†

ऐसो तो संदेस ऊधो केसौ जू भले ही कह्यो,
दूर बसे ताही तें त्रिमोही मन लाधे हैं।
व्यापक ते होहीं ताके कहे को निहोरौ कहा,
स्वर्ग अरु नर्क वे तो सब ही मैं साधे हैं।
कीजै कहा कर्म को, कढ़त नाहीं पापी प्रान,
तलफत पंछी जैसे पिंजर में धांधे हैं।
अछिर हमारे अच्छ स्वच्छ सब ही के इच्छ,
तन और प्रेम के डोरन डिढ़ बांधे हैं॥६६॥

---

* कमल—सहस्रदल कमल। इसको समझने के लिये प्रयाग में गंगापार हंस-मन्दिर देखना चाहिये। इसका वर्णन हमने अपने कबीर शीर्षक अंग्रेज़ी लेख के उपसंहार में चित्र समेत दिया है।

† यह छन्द घनाक्षरी बर्ण छन्द हैं।

ऐसो तो विचार ऊधौ हमहीं विचार रहीं,
हरि के विहार नाहीं मनते टरत हैं।
बृन्दाबनबास कीनो नाना रस रास मन,
तिनहीं बिलासन की लालसा करत हैं।
अछिरअनिन्न हमें अन्य न सुहाय नेक,
हाय टेक लागी अनुराग ही भरत हैं।
प्रानन ते प्यारे गुन रूप उजियारे कान्ह,
नैनन के तारे रूप रस को भरत हैं ॥६७॥
वृन्दावनवास षठ मासन की निसि कै कै,
विविधि विलास रास रस सुख छाये हैं।
हाहा करि पायन परि परि भेंटीं हमैं,
ऐसे विषयआतुर चतुर चित्त लाये हैं।
अछिरअनिन्न हमें महा मिस मिस यहै,
मिस देखो ग्यान स्वान कौने धौं सिखाये हैं।
आप महाभोगी उत भोगवे अनेक नार,
नारिन को जोग के संदेस दै पठाये हैं ॥६८॥
आवती नगर कोऊ नागरी नवीनी गौने,
ताके पीछे फिरत ते विरह रस रये री।
तब सब औरन की सुरत विसारत ते,
ताही की सुरत में मगन मन भये री।
अछिरअनिन्न अब पाई राजकन्या हरि,
धन्य कै जनम मानो कामसुख छये री।

हमको पठायो जोग भोग करैं औरन सों,
नवलविहारी के नवल नेह नये री ॥६९॥
भली भई ऊधौ उन मथुरा में कंस हन्यो,
भली भई तात मात मिलो सब गोत है।
भली भई द्वारका के देस के नरेस भये,
भली भई जस को दिसान में उदोत है॥
भली भई जौपै श्रीरुक्मिन सी रानी बरी,
हमरे तो उनके सनेहई को सोत है।
कहा कीजै अछिर जो अच्छिन न देखिये तो,
आपने के कानन सुनेई सुख होत है॥७०॥

ऊद्धव बचन

उनके न तात-मात पीतम न जात कोऊ,
पुरुष अजात सब ही को सुख-मूर है।
आप नहि काम कामपूरन तिहारे करे,
भक्तन की कामना ते आये इहाँ भूर है।
काहे पर ऐसे तुम बिरह बिलाप करो,
ईसुर तो सब ही में रहै भरपूर है।
जोग की समाधि साधि आप में विचार देखो,
आतम तुम्हारे कहा तुमही ते दूर है॥७१॥

गोपी बचन

आतम हमारे ऊधौ हम में हिराइ गये,
सागर में बुंद फेर कैसे पाइयतु है।

सहस समाधि हम राची स्यामसुन्दर सों,
रोम रोम रमत रमन ध्याइयतु है।
अछिर सों अच्छिन में स्वच्छ छवि छाइ रही,
सूझत न आन कान्हरूप भाइयतु है।
ऐसे निज जोग है विहंगम हमारो ग्यान,
आपुन पिपीलग्यान क्यों डिढ़ाइयतु है ॥७२॥
यह तो करम जोग आप ही करत रह्यो,
करम-ठगौरी सों ठगन चले दुनिये।
चलिहै न इहां हम ब्रज की चतुर बाल,
चाप मुख सुवा कहा कांकर को चुनिये।
अछिर सो अच्छिन से देखत प्रतच्छ जोत,
स्वच्छ छिति छोड़ कहां धूमन को धुनिये।
सब रस सागर हैं नागर गुपाल ऐसे,
नागर बिसार कैसे निर्गुन को गुनिये ॥७३॥
ऊधौ जू तुम्हारे यहि निर्गुन में सार कहां,
पानी के मथे ते कहूं माखन कढ़त है।
देखो धौं विचार बिना भीत कहां चित्र होत,
जीभ बिना जीव कोऊ वेद ना पढ़त है।
अछिर अनेक भांति कहिये कहां लौं और,
बार बार कहे बकवादऊ बढ़त है।
बिन ही अकार निराकार कौ प्रकार वहै,
गगन तरोवर पै धाइ को चढ़त है ॥७४॥

जौपै ऊधो जू कदाचित पुनि ऐसो कहो,
ग्यान-जोग, ध्यान विना मुक्ति नाहिं होत है।
ताको तुम ज्वाब सुनो हमरो विचार यहै,
यहै भक्ति रस मुक्ति हम छाँड़ी जिम छोत है।
अछिरअनिन्न कोटि मुक्ति वारों प्रीतम पै,
जिनकी मूरत कोट जोतन की जोत है।
निर्गुन ही सगुन ही रूप और कौन गनै,
मोहन के आगे जैसे मोतिन में पोत है ॥७५॥
जो तो कहौ सर्गुन तो सर्गुन प्रत्यक्ष ही है,
जिनके गुनन को न वार पार पेखिये।
जौपै कहौ निर्गुन तो निर्गुन त्रिलेप सदा,
गुनन की कहौ गुन उन में न देखिये।
निर्गुन ही सगुन ते न्यारो है अनिन्न भनै,
परम पुरुष वेद भेदन में लेखिये।
ऐसो प्यारे प्रभु ते हमारे प्रेम जोग ऊधो,
आन जोग बीस बिसौ विष सों विशेखिये ॥७६॥

उद्धव बचन

पूरन पुरुष परमेश्वर तो हैं ही हरि,
निर्मल निरंजन निगम गुन गानिये।
तिन सों विषय रस रीति प्रीत मानी तुम,
वह अनरीत न हमारे मन मानिये।
ताते वह विषय की बासना विसारो तुम,

विषै है विषम ग्यानसुधा सुख सानिये।
वेद हू पुरान भेद चरचा विचार देखो,
विषय भुअंग तौलों मुकति न जानिये ॥७७॥
त्यागो हठ नेम कर्म उपासना प्रेमपास,
ग्यान को विचारो मंत्र वेद की उकति* कौ।
इन्द्री रस जीतौ, सब बासना अतीतौ,
सुधि चेतना की बीतौ, ध्यान जोग की जुगति कौ॥
विरह विनासै ब्रह्मआनन्द प्रकासै सदा,
अछिरअनिन्न सिद्धि साधन सुगति कौ।
विरह विकार को निकारो उर अन्तर तें,
छांड़ कै कुगति गहौ मारग मुकति कौ॥७८॥

गोपी बच्चन

करनी तौ कीजे ऊधो जीव ही के सुख काजै,
मुकति कहां है जहां जीव ही को नास है।
मुकति की दशा हरिदासन मुकति देत,
आपुन करत केलि कमला-निवास है॥
तिनके विहार कैसे कहिये विकार ऊधौ,
सर्वसुखसार प्रेम प्रीत रस रास है।
मुकति की गति जैसे बेसुध मृतक दशा,
जीवनमुकित सांचों भगति-विलास है॥७९॥

* उकति = उक्ति

ऊधो जू हमारो तुम सूधो सो विचार सुनो,
सार ही को सार चार उदित अनूप है।
जोग ही को जोग निज ग्यान ही को ग्यान चन्द,
सत्‌चित अनन्द स्याम सुन्दर सरूप है।
अछिरअनिन्न इष्ट निहिचै हमारे हिय,
बिना बासुदेव ग्यान दूजो भ्रमकूप है।
जौपै कहो निर्गुन तो तुमहीं बताओ हमें,
सेइबे को तत्वरूप सूरज का धूप है॥८०॥
विषयी कहावै ठौर ठौर मन ल्यावै ऊधो,
एकै मन ल्यावै सो तो सुधा गुन गीत है।
विषय ही के हेत मिले हरि जू अभेद हमैं,
तरसैं मुनीस विषय देही मन जीत है।
अछिरअनिन्न हम यहै प्रेमजोग मानै,
रति ही के भाये ते रहत अति प्रीत है।
सब को बिसार हिये हरि के विहार बसे,
सारन को सार तो हमारैं रसरीत है॥८१॥
सुंदर सलौनी नौनी मूरत मनोहर की,
बसै हिय मांझ ताके जिये हम जीजिये।
तिनको बिसार कैसे रोपिये असार पौन,
सार कौन निर्गुन में ताहि मन दीजिये।
जो पै कहौ बड़ो हौं तो बड़े कहा सार भयो,
सार नैनू छांड़ के बहुत छाछ पीजिये।

अछिर अनूप रूप भू पर उज्यारे कान्ह,
प्रानन ते प्यारे तिन्हे न्यारे किम कीजिये ॥८२॥

उद्धव बचन

छांड़ों हठरीत मूल दुख को बिरह प्रीत,
इन्द्रीरस जीति ध्यान अन्तर में पेखिये।
चेतन स्वरूप सर्व व्यापक विचार देखौ,
नारिहो पुरुष मांहिं यहै सो बिसेखिये।
जासों ना वियोग सदा रहत संजोग भोग,
अछिरअनिन्न जोग जुगति में लेखिये।
काहे बर धरती विसूरती हौ दूर नाहीं,
पूरन अखंड ब्रह्म सब ही में देखिये ॥८३॥

गोपी बचन

कहा जानें ऊधो हम जोग के वियोगन में,
गूजर गंवार पसु लोगन की भामिनी।
हमरी तो लगन लगी है मन मोहन सों,
जैसे रवि जानै ना कमल फूलै जामिनी।
तुम तो कहत विषय छाँड़ौं कैसे छाँड़ैं हम,
याही ते कहाई हरिप्रिया जग नामिनी।
तुम्हरी में कान्ह हमैं येतक न ग्यान ऊधौ,
सुनो लोक वेदहू हमारो नाम कामिनी ॥८४॥
ब्रह्म है तो माया है पुरुष है तो प्रकृति है,
शिव है तो शक्ति है निगुन्य है तो वानी है।

विष्णु है तो रमा है, त्रिरंचि है तो सारदा है,
ईश है तो पारवती प्रगट बखानी है।
निर्गुन ही सगुन में जोर प्रेम मान ऊधौ,
एकै खण्ड एकै कहै तेई सठ प्रानी है।
अछिरअनिन्न जग जुगल प्रत्यत्त देखो,
दुहूं की नसल दुहूं रूपन ते जानी है॥८५॥
हमरे तो इष्ट ऊधौ मूरत बिहारीलाल,
सच्चितअनन्द रूप कूप दुखदारका।
नवरसवंत जसवंत भगवंत नाम,
अर्थ धर्म काम मोत्त दाता भवतारका।
ऐसे प्रभु छोड़ तुम निर्गुन बतावत हौ,
अछिरअनिन्न ताको करिये विचार का।
रूप नाहीं रेख नाहीं भेष गुन शोक नाहीं,
नाहीं तो कहत तेइ नाहीं मैं है सार का॥८६॥
रूप गुन नाव नाहीं इन्द्रो मन भाव नाहीं,
बुद्धि कोउ पाव नाहीं कैसे कहि पायो है।
जोत अरु सन नाहीं जड़ औ चेतन नाहीं,
नाम निरगुन कैसे गुनवे में आयो है।
यहि तो भरम ऊधो मिथ्या हो कटत सूधो,
अछिरअनिन्न जग येहू भरमायो है।
छांड़ि हरि प्यारे पीव जीव को संदेहु पारे,
हाहू कैसो नाम काहू ब्रह्म ठहरायो है॥८७॥

रीझै नाहीं खीझै नाहीं, बूझै सुख-दुख नाहीं,
सूझै नाहीं रूप रेख सो मत विसाली सो।
जोत है कै सून्य है कै चेतन अचेतन है,
येतोऊ न जानो जात वेद न खुसाली सो।
ताते अड़ कर काहू करी और खण्डवे को,
ब्रह्म ठहराइ लियो बुद्धि लहि ठाली सो।
अछिरअनिन्न जैसे पांच तत्व मान लिये,
चार तत्व चौकस अकास कहैं खाली सों ॥८८॥
जौपै कहौ ऊधो तुम निर्गुन को निन्दत हौ,
निन्दत न यहै तो उपासना की रीति है।
चन्द्र अरु सूर्य दोऊ नैन विश्व रूप ही के,
तदपि चकोर चित्त चन्द्र ही सों प्रीति है।
सर्गुन, निर्गुन वासदेवजू के रूप दोऊ,
हमरे सरगुन रूप ही की प्रतीति है।
जीवत मरत जैसे तैसे दुख सुख सहैं,
हमरो जनम नेम ऐसो विधि बीतिहै ॥८९॥
काहे पर ऊधो जू बृथा ही बकवाद करौ,
ऐसो कहा देखो तुम्ह निर्गुन के रंग तैं।
खोजत हौ जोग जगदीश के समीप बसि,
खोदत हौ कूप कूल पावन सु गंग तैं।
कैधौं कहि अछिर विचार चले हमहीं कौ,
काहे को बकावत उठाइ आग अंग तैं।

विरह की पीर तुम्हैं व्यापी ना अनिन्न भनैं,
बिछुरे न वीर जदुवीर जू के संग तैं ॥९०॥
वे तो जदुवीर जानैं अपनी ही पीर ऊधो,
हते वे अहीर तबै सबै हम बाम हीं।
हमैं तज भाजे जाइ मथुरा विराजे तहाँ,
कुब्जिा सों साजे सुख राचे रस काम हीं।
अछिरअनिन्न पुनि द्वारका निवास करो,
सोरह सहस नार करी तेहि धाम हीं।
चाहैं आप सुख कहा जाने ते बिरानो दुख,
प्रेम को प्रमान एक जानो राधेराम हीं ॥९१॥
वे तो हैं विहारी बात हमरी बिसारी उहाँ,
मिलीं बहु नारी तहां रहे सुख सान है।
तुम ऊधो ऊपरी से चुपरी सी बातें कहौ,
जानौं कहा काहू को सनेह दुखबान है।
घायल के घाव जैसे कठिन कराहि उठै,
ऊपरी बँधावे धीर कैसे कोऊ आन है।
अछिरअनिन्न वहि ग्यान ही को काम नाहीं,
व्यापी प्रानपीर जाहि सोई पीर जान है ॥९२॥

अनिन्न बचन

ऐसी सुन ऊधव जू मन में विचार करैं,
कैसो जू संदेस कैसे इन पै पठाये ते।
ये तो ब्रजवासिनी विलासनी निवास ही की,

याही ते तो बासदेव लै लै उर लाये ते।
प्रेम-मदमातो ताको जोग को वियोग कहा,
अछिर हौं जानी हरि हमही भ्रमाये ते।
यहै भक्तिजोग कृतजोग जिनै जोगनाथ,
जोबन-विहार जोख जोखत ही आये ते ॥९३॥

उद्धव बचन

बोले तब ऊधो धन्य धन्य बड़ भागिनी हौ,
तुम्हरे सभाग हू ते तत्त मत पावहूँ।
दर्स रावरे के पाय परम सनाथ भयों,
जान गुरु मात मैं चरन सिर नाव हूँ।
मैं तो पतहा हौं ताते छांड़िये बचन चूक,
देउ अब आयस तौ उन पै सिधाव हूँ।
उनको संदेस तैसो विनयों तिहारे आगे,
तुम जैसो कहो तैसो उनको सुनाव हूं ॥९४॥

गोपी बचन

ऊधो जू तिहारी सीख सीस मान लई हम,
कीन्ही तुम दरस दै परम सनाथ जू।
दसा है हमारी सो सुनाइयो विहारी जू को,
मनि विन फनि त्यों धुनत गोपी माथ जू॥
घर औ विपिन मैं विहाल भई गाइ गाइ,
जीवती हैं हम यों तुम्हारे गुनगाथ जू।
हमरी कुघातें ऐसा कहियो संदेसो जाइ,

जरे पर लोन कैसो मीड़त हौ नाथ जू ॥९५॥
कहियो संदेसो मेरो ऊधो तुम केसोजू सों,
जैसो तुम कहो तैसो हमैं नहीं भाइवौ।
रावरे की सुरत बिसारवो असार जान,
सार जान मनसा निरंजन में लाइवौ।
अछिरअनिन्न ज्योंही हमको सुभग लगौ,
त्योंही व्याहुतन को वैराग समुझाइवौ।
आठहु पहरि परे ही परे विहार करैं,
जोग तो कमलनैन कमल से धाइवो ॥९६॥

सवैया छन्द

जोग कहो हम जोग करैं संग भक्ति कहौ हम भक्ति गुनै हैं।
ग्यान कहौ हम ग्यान गहैं संग ध्यान कहौ हम ध्यान उनै हैं।
रीत भली जुग में अनरीति ही ते हम हूँ निज सीस धुनै हैं।
नाहिं संजोग सो जोग कहूँ कह नारिन सो हठजोग सुनै हैं ॥९७॥

दोहा

सुनि संदेस ऊधो उठे सब सों करो प्रनाम।
चलि पुनि जसुदा नन्द पै बचन कहे तिहि जाम ॥९८॥

ऊद्धव बचन

सोरठा

तुम धरियो मन धीर, करियो जिन संताप मन।
कहियत वे जदुवीर, सो इक दिन इत आइ हैं ॥९९॥

श्रीनन्द बचन

मुरिल्ल छन्द

बासदेव बलदेव देव सम सेइयै।
हम सुत कर नहिं मान जान प्रभु धेइयै ॥
तिन विन दीन अधीन न बान परै कही।
अबकै दरसन देव अर्ज करियो यही ॥१००॥

अनिन्न बचन

अरिल्ल गीतिका छन्द

अरज कर मनि रतन रथ भर दिये हरि को भेंट ही।
भेंट मिल पुनि चले ऊधव विथा सब की मेंट ही ॥
हांक रथ पथ उदित आतुर आइयो द्वारावती।
गत महल महँ जहाँ प्रभु हैं सहित श्री रुकमावती ॥१०१॥
निरष हरष प्रनाम कीन्हों मिले हरि अति प्रेम सौं।
कुसल पूछ प्रसन्न हित जुत त्रष्ट* दिय ढिग रीत सौं ॥
दै सबन की भेंट फिर संदेश गोपिन के कहे।
लगे बरनन दसा ब्रज की नीर भरि लोचन रहे ॥१०२॥

उद्धव बचन

दंडक छंद

महा प्रेमसिंधु ब्रज-मंडल में दीनबन्धु,
केती मति वेद दीन पावे थाह हरि जू।
काम से कमठ जामै विरहि भुवंगम है,
भाव मन भौंर जीव प्रीत सी लहरि जू ॥

* हमारी पुस्तक में ऐसा ही लिखा है। इसका आसन अर्थ हो सकता है।

रावरे ही ग्यान के जिहाज साजे फिरैं गोपी,
और को अछिर छूटे धीर बूड़े हरि जू।
तुम्हरे ही लालन की लालसा न पूरे मन,
भये मरेजीवा जीव जसुधा महरि जू ॥१०३॥

छप्पय छन्द

तिहि समुद्र में गयों भयों नौका को कागा।
मो बिसरयो सब ग्यान देख उनको अनुरागा॥
कहि हारौं बहु बोध उनै नहिं नेक सुहाई।
इक तुम्हार हठ लगी हुती आसा बिसराई॥
कहि अछिर विविधि संकट सहे, तुम बिन मन प्रनते टरत।
तुम करुनासिन्धु कहाइकै नेक न मन करुना करत ॥१०४॥

दोहा

सुन करुना ब्रजवास की करुना मन कर प्रेम।
बूझ उठे तब मधुप सौं खबर राधिकानेम ॥१०५॥

श्रीकृष्ण बचन

कवित्त

वे तौ ब्रजबाला, मही प्रेम की हैं साला,
मेरे उर की है माला एकै एक अधिकारी है।
सब ही में राधाजू हैं प्रीति की अगाधा जाइ,
सदा रति साधा रही पलकों न न्यारी है।
प्रीत हम खांडी भरि जोवन में छांड़ी,
उन माहीं प्रीत माड़ी और सुरत बिसारी है।

ताकी सुधि ज्वारी ऊधौ बन्दी सों नियारी कहौ,
प्रान की पियारी मनभावती हमारी है ॥१०६॥

उद्धव बचन

प्रेम मतवारी वृषभान की कुमारी ऊरो,
मगन सुमारी मरी जीवत डरावरी।
देखी हम भोरी वैस दिनन की थोरी सुनी,
हती अति गोरी अबै देखी अति सांवरी।
कहै नहीं बूझो हम सूझो कैधौं नाहिं वाहि,
अछिरअनिन्न ऐसी लखी तैसी थावरी।
हम सो जबानी कोट गति जो बखानी,
सखी सबई सयानी लखी राधा एक बावरी ॥१०७॥

दोहा

राधा जुति सब त्रियन की कहा कहौं वह गाथ।
दुख देखो तुम्हरी त्रिया कह लीला तुव नाथ ॥१०८॥

श्रीकृष्ण बचन

छप्पय छन्द

लीला विरह विहाल करी इच्छा मम ऊधौ।
गोपी पहुव गोपाल रूप मम इक वहु सूधो॥
हौं नारायन ब्रह्म वेद मम स्वास प्रसंसत।
तासु रिचा ब्रजनार लहर जैसे हिय अंसत॥
पूर्व अवतार जब जब धरौ तब प्रगटे वे निज भगत।
कहि अछिर तिनहि संताप कहि सुतिन्ह गाइ तरिहै जगत॥

दोहा

योंकहि ऊधव को भरम दूर कीन्ह हरिराइ।
ग्यानभक्त को गर्ब गढ़ ढाहो ब्रजहिं पठाइ ॥११०॥

दोधक छन्द

ऊधव पुनि पर पांय सिधाये ।
रेवती राम के धामहि आये ॥
भेंट बैठार धनी श्रीछेम ।
बूझ उठे ब्रज की सुध प्रेम ॥१११॥
प्रेमकथा जब ऊधव भाषी ।
जो हरि सौ सो सबै अभिलाषी ॥
सो सुन राम महादुख पाये ।
लोचन नीर भरे ढर आये ॥११२॥

दोहा

तब ऊधव बिनती करी कृपासिन्धु बलराम ।
बारक दरसन दै धनी सारौ ब्रज के काम ॥११३॥

हंस छन्द

तब इक दिन बलराम गँभीर ।
जानी ब्रजबासिन की पीर ॥
तब कछुवंक लै सेना संग ।
चले मान अति प्रीत अभंग ॥११४॥
नंदगांव के गेंवड़े आये ।
सुन गोपिन आगेहि बोलाये ॥

भेंटे नंद परम सुख भयो।
दारुन दाहु हृदै को गयो ॥११५॥
ललित महल में डेरा दिये।
कटक मुकाम तहां लै किये॥
राम कुंवर पुन भीतर गैन।
मात जसोधा को सुख दैन ॥११६॥

दोहा

मिली जसोमति रोइ कै, मान महा मनमोद।
लै बलाइ मुख चूम कै लै बैठी धर गोद ॥११७॥

कुमार ललित छन्द

तब आई चल गोपी,
अति प्रेम प्रीत वोपी।
दरसन रस पावै,
पलक पल न लावै ॥११८॥

सवैया

पल सौ पल लागन देइ नहीं, पल ही पल सिंधु प्रवाहु बही।
बिछुरी मन कौ फनि पावहु ज्यों जिमि प्रान सजीवनमूर लही।
बलराम को आंनद देख त्रिया सब चंद चकोर हिलौति रही।
कुललाज कौ जीत अनिन्न भनै रस रीत की प्रीत न जात कही॥११९॥

सुन्दरी छन्द

कीन प्रसाद तबै जदुनागर।
जेंइ अचै उठियौ सुखसागर॥

चावत पान मनोहर मूरत।
पालक त्रष्ठ महा सुखसूरत ॥१२०॥
बैठी महर सब घेर के भामिन।
मानहु चंद धरै बहु दामिन॥
बोल उठी इक नार उराहन।
हौ तुमसे तुमही प्रभु पाहन ॥१२१॥
पाहन को जद प्रान चढ़ाइय।
(यह पंक्ति मूल में नहीं है)
त्यौं तुम्ह पीर न पावहु नाइक।
पाहन तै जड़ चेतन काइक ॥१२२॥
प्रीत करंत भये अति सुर्जन।
छांडत बात कहीं नहिं दुर्जन॥
भौंर सं प्रीतम हौ प्रभु रावर।
भौंरह वस्य भई हम बावर ॥१२३॥
देखत के अति सुन्दर ग्यानी।
चित्त मलीन सदा बगध्यानी॥
रोवत हैं हम हां यह नागर।
नाहर बनार गाथ उजागर ॥१२४॥

दोधक छन्द

इक नाहर नै तर बानर देखौ।
पाखँड ताकर मंत्र विसेखौ॥
फूंकहिं फूक धरै पग भू पै।
बानर बूझिय देख स्वरूपै ॥१२५॥

बानर बचन

दोहा

प्रबल बाघ बनराइ तुम्ह जिन कै हिरन अहार ।
फूंक फूंक पग धरत हौ ताको कहा बिचार ॥१२६॥

बाघ बचन

हम तपसी हिंसा न कर जानत धर्मप्रभाव ।
कीट चिटी पग ना चपै फूंक धरत धर पाव ॥१२७॥

चौपाई

तपसी सुन बानर सुख पायौ ।
पाइन परत उतर तर आयौ ॥
पाइ परत पकरौ वहि पापी ।
कखरो बीच कंध सौं चापी ॥१२८॥
ज्यों चापै त्यों हँसै महाई ।
देखत अहहि करत बनराई ॥
अचरज भुज ढीले नहि जानो ।
कूद सखा पर गौ मरदानो ॥१२९॥
रोवन लगौ तबै दुख पायौ ।
तब नाहर हँसि बयन सुनायौ ॥
पकरे हँसे गये अब रोवै ।
तेरी दसा मो अचरज होवै ॥१३०॥
सुन बानर तब बचन सुनायौ ।
पकरै मोहिं यहै हंसि आयौ ॥

ऐसे तपी भये जग माहीं।
जीवनमुक्त नर्क में जाहीं ॥१३१॥
अबि छूटै मै यों दुख रोयो।
तू पापी पखंड कर खोयो॥
किते दिनन खाये अरु खैहै।
विस्वासघात मोसो कह ह्वैहै ॥१३२॥

मुरिल्ल छन्द

यह नाहर बानर गाथ सुनौ बलिरामजू।
यह विचार हम रुदत आठहु जाम जू॥
परहरि तुम्ह हम सी दुखनी किती ठगी अरु ठगहुगे।
तुम ठगिया बेपीर ठगौरी लिखहुगे ॥१३३॥

चौपाई

भले दरस दीन्हे प्रभु आपन।
हरी राम नैनन की तापन॥
और कहो आये इत कैसो।
कैधौं दियो पुन जोग संदेसो ॥१३४॥

कबित्त

ऐसे कपटी की भटू काहे को चलाई बात,
जाके कहे सुने तन जियरा जरत है।
कुटिल कठोर कृतघनी सो अनिम्र भने,
हमरो न कृत ब्रत मन में धरत है।
उनकी कहाइ हम फिरती बिहाल भईं,
वे जड़ जगत उपहांसे न डरत है।

जोर जोर गोपी ही कहायें तब गोपीनाथ,
निर्लज्जता तास ही की लाज ना करत है ॥१३५॥
वे तो अति पाखंड ही पूरे नख सिख सखी,
धोखे बस्य भई हम जान्यौ न मरम को।
अछिर सो छली क्रूर अधिक बधिक हैं ते,
महा निरदई दया जानै ना धरम को॥
जैसो हमें छांड़ेउ हो तरुनी अनंत करी,
तैसो उन हेतु जंभा जाहिंगे भरम को।
ऐसे कपटी सो पतिव्रत तजि बीधी हम,
ताते यह दोस सखी आपने करम को ॥१३६॥

सोरठा

यों कहि विरहिन बाम, रोइ रोइ गिर गिर गई।
प्रेम बस्य श्रीराम, बोधन को बोले बचन ॥१३७॥

श्रीराम बचन

सवैया

हमको किम दूखन देत प्रिया, हम ही तुमको मरते तरसे तो।
आपनो काबू चलै कहि अछिर, दैवी है सक्ति दियो दुख येतो।
जो करतों करतार विवेकहि प्रीत दई ढिग वास न देतो।
ताते विचार तजो दुख को रुच चन्द चकोर हतौ चित चेतो॥१३८॥

अनिन्न बचन

विशेषक छन्द

यों कहि परम सुजान सखी सु उठाइ लई।

पूरन प्रेम सनेह सबै उर लाइ लईं ॥
जैसे ही कृष्ण रसी रस क्रीड़त ते नितही।
तैसे ही बर बनिन राम रमन्न लगे तही ॥१३९॥

गीतरम्य छन्द

एक दिन श्रीराम नागर। गये वृंदावन उजागर।
रमत अति रत काम आगर। आप इक बहु त्रिय उजागर॥१४०॥

सवैया

एकन सों अति गावत नाचत एकन सौं हँस नैन निहारैं।
एकन के मुख चूमत चंचल एकन के कुच अंचल धारैं।
एकन सो भर अंकन भेंटत एकन सों रतिकेल सम्हारैं।
ज्यों गज मत्त अनिन्न भनै जिमि बामन में बलिराम बिहारैं॥१४१॥

दोहा

कर बिहार अति श्रमित ह्वै दीने जनै पठाइ।
कालिंदी जलकेल कहँ आवहु वेग बुलाइ॥१४२॥

मदभार छन्द

तत गच्छ दूत, बच सकृत धूत।
चल नदी बाम, बलवंत राम॥१४३॥

त्रोटक छन्द

जमुना मध नीर गंभीर बहै।
जल ऊतर बाल कछू न कहै॥
फिरि दास उदास गये बल पै।
कह नाइ कछू न चलै जल पै॥१४४॥

पद्धरी छन्द

तब कोपि राम हल हत्थ लीन।
कालिंदिहि भेदन छेद कीन॥
जिमि बिच्छिय से पग खिचै सूल।
त्यों उलटि परो जमुनादुकूल॥१४५॥
तब कंप जमुन धर देहि आइ।
किय अस्तुति सो पग सीस नाइ॥
अपराध छमौ देवाधिदेव।
मैं अधरबुद्धि जाना न भेव॥१४६॥
नर मान मैं न तब हुकुम कीन।
प्रभु आन भई अब चरन दीन॥
राखौ दयाल जनु भिन्न काज।
दह केलि करन जल चलहु आज॥१४७॥

कुण्डलिया

श्री हलधल सुन करि कृपा नहि आकर्पन कीन।
गोपिनजुत जल केलि कहँ देरे गये प्रवीन॥
देरेहु गये प्रवीन करी क्रीड़ा दुखदूषन।
पुनि कढ़ि बार विसर्जि पार भूपे सब भूषन॥
प्रेम मगन रस भये हँसत खेलत जुत खलथल।
वृन्दाबन ते ब्रजहि गये बृजमनि श्री हलधल॥१४८॥

दोहा

पुनि रेवत परबत गये सकल प्रिया लै संग।

रमन लगे प्रिय बारुनी नाना रस रति रंग ॥१४९॥

अनिरुद्ध बचन

दंडक छन्द

नर्कासुर को मित्र एक बानर द्विविद आयो,
गर्जो घनघोर जोर कँपे सुर साकरा।
देखि रिस राम बान ताना मरदानौ वह,
नारिन तै दुरदूर नियरे छलौकरा।
अछिर रिसाइ तजि सायक खिसाइ प्रभु,
पकर्‍यो झपट भूमि पटको दै झोकरा।
मूद मुख नागर सुमार ही गरद करो,
मरदौ मरद बल बल कैसो बोकरा ॥१५०॥

गीतिका छन्द

मार्‍यो दुष्ट दुविद बाजत दुंदुभी सुर हर्षियो।
जै जै किये सुर विविध अस्तुति फूल बल पर वर्षियो ॥
जीत बल गोकुलहि आये किये नंद बधावने।
भाट भिच्छुक द्विजन दीनै, दान बहु पहिरावने ॥१५१॥

तोमर छन्द

इमि मास द्वै रहि राम,
सारे सबन के काम।
तब दै बिदा मिल भेंट,
आये घरैं दुख मेंट ॥१५२॥
तब मिले मात पिताहिं,

आनन्द बरन न जाइ।
पुनि मिले अनुजहिं आन,
सुभ कुशल प्रश्न बखान ॥१५३॥

प्रिया छन्द

हरि हरष प्रेम विचारियो,
पर पाइ पांइ पखारियो।
बैठार पीठ उमेद सों,
पूजा करी विधि वेद सों ॥१५४॥
पुन असन करत समीप है,
बूझत खबर कुलदीप है।
उनके हृदय तस प्रीत है,
कहिये कहा ब्रजरीत है ॥१५५॥

श्रीराम बचन

दोहा

तब ते प्रीत विशेष अब ब्रजवासिन के वीर।
आपन हू चल के हरो ब्रज-युवतिन की पीर ॥१५६॥

श्रीकृष्ण बचन

सोरठा

जगत जुरहि कुरखेत, नंदादिक उत आइ हैं।
हम चलबो उन हेत, करबी बीर मिलाप तहँ ॥१५७॥

हयमाल छन्द

कहि राम जू सह स्याम जू यहि मंत्र दृढ़ कीन्हों।

ता समय सुद्ध मन मिलन उत्सव प्रेम चित्त दीन्हों ॥
पुन समय सूरज ग्रहन आवत हुक्म कुटुम्बहिं दियो ।
तंह चले सजि बजि सकल यादव सबन मिल उमगो हियो॥१५८॥

भुजंग प्रयात

चले साज बसदेव सेना प्रमस्तें ।
चली देवकी आदि रानी समस्तें ॥
चले उग्रसेनं महाराज जेठे ।
चले और यादौ बड़े और हेठे ॥१५९॥
चले राम श्रीश्याम यों संग साजैं ।
मनुष्याचरन् धर्म तीर्थौं निवाजैं ॥
चली मातु रुकमावती सुखनिधानी ।
चली सत्यभामादि दै सर्व रानी ॥१६०॥
चले प्रददुवन् आदि दै के कुमारं ।
चले साज के आदि यादौ अपारं ॥
चले कौतुकी हू हरैं सब्ब दूखा ।
रहे ग्राम कछु सैन अनुरुद्ध ऊषा ॥१६१॥

सोरठा

पुन बनितान समेत, यादव छप्पन कोटि जुरि ।
चल आये कुरुखेत, तहां उदित डेरा करे ॥१६२॥

दण्डक छन्द

चले भगवंत, जसवंत, बलवंत बल,
प्रबल समूह सैन गैनन सपत है ।

रथी अति रथी समरथ महारथी,
प्रथ हथी हय गय पथ प्रथमो चपत है।
अछिरअनिन्न रज मार्ग रजनिस भई,
जुगनू समान भानु दीपत छिपत है।
धर धचकत सेसफन सड़कत तहां,
सेन भार कमठ को पीठऊ कँपत है॥१६३॥

त्रोटक छन्द

इमि श्री भगवंत चले सज कै।
दल काल कतल्लु महागज कै॥
चलते दलते धरनी धचकै।
करि डेरा निवास नदी करकै॥१६४॥
इमि आइ उठे कुरु-खेत धरा।
बहु जोजन फेर मुकाम परा॥
सुर, देव, मुनी, नृप आइ मिले।
कुरु-पांडव पूरन प्रेम पिले॥१६५॥

दोहा

तँहा लोग महराज के कौतिक गये बजार।
देखो ब्रज को ग्वाल इक मूढ़न को सरदार॥१६६॥

दोधक छन्द

हाथ लठा पटका सिर बांधै।
गुञ्जन दामिन कामर कांधै॥
कौतुक चौकत चक्रित डोलै।

बांक कोठर ठठोर सो बोलै ॥१६७॥

पद्धरी छन्द

तब देख राजगन हंसे ताइ।
पुनि हांसिन ही बूझो बुलाइ॥
को है कहां कौ तू कौन जाति।
कित फिरत चकित सो भर्म भांति ॥१६८॥

दोहा

हम गोकुल के ग्वाल हैं आये कुलजुत जात।
तुम नागर केहि देस के कहो कौन हो तात ॥१६९॥

हंस छन्द

तब बोले जदुकुल कलहंस।
हम जग जस जाहिर जदुबंस॥
द्वारावती नगर सुखबास।
आये तीरथ लसत विलास ॥१७०॥

मुरिल्ल छन्द

सुनि द्वारावती नाम ग्वाल उमग्यो हियो।
है नृपगन पग परि वाने बिनती कियो।
मेरो मित्र गुआल द्वारका जाइ रहौ।
परिहरि नाम कन्हैया तुम जानत तो मोहि कहौ ॥१७१॥

सुन्दरी छन्द

आपु समाज हँसे सब नागर।
भोरो विचार भनै हित आगर॥

वे कन्हई हमरे कुलनायक ।
आये इहां उनके हम पायक ॥१७२॥

प्रिया छन्द

यों सुनत ग्वाल हर्षो हियौ ।
द्दग प्रेम नीरन वर्षियो ॥
परि पाइं विनय सुनाइयो ।
मो कान्ह पद दरसाइयो ॥१७३॥

सरस्वती छन्द

जान तो अति प्रीति जदुकुल लै चले गहि बाँहि ।
लै गये जदुनाथ पहँ जहँ भीर की मिति नाहिं ॥१७४॥
राजगन जो बदन हेरैं नार द्दग को कोर ।
देखि ग्वालहिं उठे आतुर महा हित कै जोर ॥१७५॥

दंडक छन्द

देखि ब्रजग्वाल को गोपालजू पुलकगात,
आतुर ह्वै धाये प्रीति प्रीतम हितै रहे ।
बाँहन मैं बाँह हियो हिलकि हिलकि मिले,
अति प्रेम अंग नैन नीर निरतै रहे ।
सरस कै आनंद परसिपर पायँ छिये,
दरस प्रमोद अंग दुबिधा बितै रहे ।
अछिरअनिन्न ऐसी प्रीति हरि प्रीतम पै,
कौतुक तकत सक्त चकित चितै रहे ॥१७५॥

सवैया

यों मिलि भेंटि गुपाल गुवालन हेम सिंहासन त्रष्ट दिये ।
आप विभूषन भूषित ता तन तासु विभूषन आप लिये ।
कहि अच्छ्रि बूझ भले कुसली मुसलो सम तापद पानि दिये ।
पुनि बेरहि बेर कहैं करुनानिधि प्रीतम आज सनाथ किये ॥१७६॥

तोमर छन्द

मिलि भेंटि यों सुख पाइ ।
तब ग्वाल खबर सुनाइ ॥
आये इहां सब लोग ।
रावरे दर्शन जोग ॥१७७॥

दोहा

सुनत नाथ अति फुल्ल मन तामुख तन मन वारि ।
कही मित्र चलि खबर करि आवत मिलन मुरारि ॥१७८॥

कुंडलिया

ब्रजवासी प्रभु खबर सुन गये तुरत अकुलाय ।
जाय कही ब्रजराज सों आये इत हरिराय ॥
आये इत हरिराय सहित परिवार नरेसुर ।
सेवत भूप समूह भूमि पर मनहु सुरेसुर ॥
हौं मिलि आयो जाइ तहै उन प्रीति प्रकासी ।
आवत करन मिलाप सजो आरति ब्रजवासी ॥१७९॥

मोतीदाम छन्द

इती सुनि नन्द जसोमति मोद ।
बुलाइ लै ग्वाल लियो धर गोद ॥

निछौर करी तेहिपै मनि मुक्त ।
बधाये किये अति आनंदजुक्त ॥१८०॥
नची ब्रजनागरि प्रेमनपूर ।
दई जनु ग्वाल सजीवनमूर ॥
किये अति उत्सव आनंद प्रेम ।
सजे कलसा रत पाँवड़े नेम ॥१८१॥

मोटक छन्द

तौ लौं हरि आये कुटुम साजुत ।
फूलि उठीं ब्रजतिय निहारि उत ॥
लिये बजाय गाय आगे सर ।
मिले नन्द बसुदेव प्रेम भर ॥१८२॥
पुनि हरि राम मिले अखंड हित ।
पाय परे हरि प्रेम मानि पित ॥
मिले सकल गोपिन प्रमोद कर ।
पुनि बैठे सब मिलि आनंद भर ॥१८३॥

दोहा

लाज छांड़ि गोपी सकल, तहँ ठाढ़ी भईं जाय ।
चितवत चन्द चकोर लग तन मन सुरति लगाय ॥१८४॥

सवैया

देखत श्रीमनमोहन मूरति पूरत प्रेम प्रिया ब्रजनारी ।
नैनन नीरनदी निकसी बिकसी, दिलही मिलही हरिप्यारी ।
अछिर अच्छिन के पल लागत दैन लगीं विधिना कहँ गारी ।

काहे को रोस ढवाढर चेत तो औसही राखत आंख हमारी ॥१८५॥

सोरठा

देखत तिनके प्रेम, उठे नाथ अति आतुरे।
गोपिन जुत हित नेम, गये भीतर जसुमति मिलन ॥१८६॥

सवैया

पायन जाइ परे बिबि बंधव, देखि जसोमतिजू मन मोदी।
लै छतियां छिन छाड़ै न आछिर अच्छिन अश्रु नदी बहरोदी॥
कंठ छुड़ाइ बरयाइ मरू कर राखो त्रिया कहि बातैं बिनोदी।
आनन चूमि बलाय लै प्रानअधारन बैठी धरा धर गोदी ॥१८७॥

मनोरमा छन्द

सब गोपी पाइन लागीं।
अति प्रेम प्रीति अनुरागीं॥
पति प्रानसजीवन पाये।
आनंद भये मन भाये ॥१८८॥

तोमर छन्द

यों मिलि परम सुख पाइ।
ब्रज जनन तपन बुझाइ॥
पुनि मांगि आइस राज।
डेरहि गये सिरताज ॥१८९॥

दोहा

श्रीरुक्मावति सों कह्यो ब्रजजन प्रेम मुरारि।
सुनत रीझ रानी सबै बोलीं बचन बिचारि ॥१९०॥

प्रिया छन्द

प्रभु धन्य वे ब्रजबासिया।
जिन महा प्रेम प्रकासिया॥
हौं उनहिं लहि सुख पावहूँ।
प्रभु कहहु नेवत बुलावहूँ॥१९१॥

अभीर छन्द

सुनि प्रभु प्रेम सुवानि।
बोले धन्य धन्य रानि॥
मम इच्छा जुत जानि।
तुम प्रगटी हित वानि॥१९२॥

सोरठा

सुनि श्रीरुकमिन रानि, नेवते सब ब्रजवासिया।
नाना रस सुखदानि, अन्न पान पकवान किय॥१९३॥

गीतका छन्द

तब बोल के नन्दादि गोपिन पांन तृप्त कराय।
पुनि गोपिकांन समेत, हेत बुलाइय जमुमति माय॥
आई जसोमति मोद कै राधादि गोपी संग।
तहँ मातु देवकि रोहिनी लहि उठो प्रेम उमंग॥१९४॥

सवैया

पूरन प्रेम रती मन देवकी कंठ जसोमति लाइ रही जू।
रोइ बैठारि विचारि कही तुमही हम बूड़त सिन्धु गही जू।
जेती करी करनो हमको तुम तेती नहीं मुख जात कही जू।

इंदहि को पट देहिं तुम्हैं बतऊ तुमको हम उर्न नहीं जू ॥१९५॥

दोहा

तब जसुमति के पां परी श्रीरुकमनी सुरान।
मिलीं यशोदा प्रेम सों निरखत नैन सिरान ॥१९६॥
श्रीरुकमिन के पां परी उमंग सकल ब्रजनारि।
हरिं तैं अतिहत हित श्रुतिरिचा पूरन शक्ति विचारि ॥१९७॥

पद्धरी छन्द

तब रुकमिन सबको उठाय।
ले गइं आसन कहँ पग धुवाय ॥
मनि चौकन बैठारे प्रबुद्ध।
कंचन झारी धर नीर सुद्ध ॥१९८॥
परसन लागी कर अपने प्रेम।
नाना रस व्यंजन थार हेम ॥
पांवन लगीं गोपी सुखैन।
अस न सुने जे देखे नैन ॥१९९॥

सरस्वती छन्द

पौं परस श्रीरुकमावती कीन्ही तृपित सब नार।
करवाइ अचवन पान दीन्हे सबन किय मनुहार ॥
पुनि हुकुम दासिन को दियो सब कँह पलँग बिछवाइ।
पारी तो परम अनन्द सों अति प्रेम प्रीति बढ़ाइ ॥२००॥
पुनि सलज श्रीरुकमावती की ललित सेज सम्हार।
पौढ़े तहां हरि आइके हिल मिल गरें भुज डार ॥

तब सबन की सब खबर श्री जू कही प्रभु सों सब्ब।
प्रभु पाइ सुख मुसक्याइ के इम बचन भाखे तब्ब ॥२०१॥

श्रीकृष्ण बचन

दोहा

राधहिं नींद न आइ है, हम जानत यह रानि।
पय पियाइ आवो प्रिया, प्रेम प्रीत उर आनि ॥२०२॥

छप्पै छन्द

सुनि स्वामी के बचन उठी श्रीरुकमिन आतुर।
कामधेनु को दूध मधुर औटों रुच चातुर॥
बेला भर लै दियो जाय राधाहिं सभागिन।
तपित सीत नहिं लहेउ प्रेम उन्मद तरुनामिन॥
इम तृप्त कै के सुख पाइ कै आईं चल प्रीतम सरन।
नित नवल कोमल करन सु लगीं रुचिर चापन चरन ॥२०३॥

अर्द्धदण्डक छन्द

तब देखे हैं चरनन में फुलक।
कहि बचन चरन अनुराग ललक॥
प्रिय अति अचरज है मोहि हलक।
अबहिं कित परे पगन में झलक ॥२०४॥

श्रीकृष्ण बचन

हंस छन्द

सुनि प्रिया कहा कहौं हौं बात।
तुम राधहिं प्यायो पय जु तात॥

बे निज भक्त कहिये पग माँय।
सो लाग परे पग फुलका जायँ ॥२०५॥

श्रीरुक्मावती बचन

प्रिया छन्द

प्रभु कहा दुबिधा राखिये।
निज भक्त राधहिं भाखिये॥
पग कहे राधा मोहि ये।
हम मांझ कीधौं नाहि ये॥२०६॥

श्रीकृष्ण बचन

दण्डक छन्द

हमरे चरन बसैं राधिका के उर रानी,
तुम्हारे चरन मेरे हृदय गुनीजिये।
तुम तो सकति साछात महालच्छिमी हो,
तुमहीं ते हमै भगवान पद दीजिये।
तुम्हरे प्रवेश विश्व पूजत हमहिं रानी,
तुम्हते न और जग दूजो है पतीजिये।
भक्त हेत उन्हें पद दीबे को कसौटी करी,
आपुन कृपावती न कोप कछू कीजिये॥२०७॥
तुम्ह तौ हमारी महालक्ष्मी हौ प्रानप्यारी,
जाहिर जगत मेरे हृदय सदा रहो।
तुमहीं हमारे महासिद्धि हम सिद्ध जाते,
आठौ सिद्धि नवौ निधि करत उदार हो।

तुमही हमारी महा कामेश्वरी मूरत हौ,
सदा कामकेल सुख विरहबिदार हौ।
राधा कहा तुम्हरे समान रुकमिन रानी,
तुम तो हमारे प्रानजीवनअधार हौ ॥२०८॥
राधा चोरी चोरा मिली वारे हमें बाट घाट,
तुम्ह कोरी कोरा सेज सदा सुखदाई है।
राधा के बिहारन को लालच ललात रहे,
तुम्हरे बिहार निस-बासर विहाई है।
तुम वरनारी ब्रतधारी हौ तुम्हारे हम,
राधा वरनारी प्रीत ही ते जस छाई है।
सुनो रानी रुकमिन रिसाती कौन बातैं तुम,
राधिकहि बावरी तुम्हारो पट पाई है ॥२०९॥

दोहा

राधादिक भक्तन सबै, हम तुम एक स्वरूप।
ताते कोपहि तज प्रिया, कीजै कृपा अनूप ॥२१०॥

श्रीरुक्मावती बचन

कुण्डलिया

कोपहि का पहि करहुँ प्रभु तुम साईं के भक्त।
हौ बूझी यहि हांसही, तुम राधहि अनुरक्त॥
तुम्ह राधहि अनुरक्त, भक्त राधा अनुरागी।
ऐसी प्रिय नहिं तुमहिं मोहिं जैसी प्रियलागी॥
है अति विरहि विहाल सहित गोपिन हित वो पहि।

जै ये तिनको मिलन नाथ तिन कहिअ न कोपहि ॥२११॥

रोला छन्द

सुनि श्रीजू के वचन गये राधादिक पर हर।
उठीं सकल ब्रजनारि प्रेम पूरन करुना कर॥
रहीं पांय लपटाइ पाइ जीवन अति आनँद।
भेंटी सबै उठाइ अंक भर भर परमानँद॥२१२॥

दोहा

पुनि आये हरि द्वार में उठ राधा अकुलाइ।
प्रेम मगन विह्वल चली धरत डगमगे पाइ॥२१३॥
तब हरि आतुर प्रेम सों लीन्हीं कंठ लगाइ।
दुहूं ओर दृग झर बरख, आनंद उर न समाइ॥२१४॥
तब उठाइ मुख चूम के लै बैठे धरि गोद।
कुशल क्षेम विधि परसपर बातन कहत विनोद॥२१५॥

कुण्डलिया

तब गोपिन कर जोर के विनय कियो दुख रोय।
तुम हमको ऐसी करी जैसी कहूँ न होय॥
जैसी कहूँ न होय करी बधिकौ ना अधिकी।
वहि मारत जिय नाट नाथ कीन्हो तुम मधिकी॥
तुम सम तुमही रहे सदा हम सी हम हूँ पुन।
दवन दाव बिन कियो रवन कहिबे कहि गोपिन॥२१६॥

दण्डक छन्द

सुन के कमलनैन नैन भरि बैन कहे,
हमैं कौन चैन प्यारी तुम सो विरक्त की।

तुम मोहि रटो मैं रटौं तुम्हें आठो जाम,
मिलिये न एक छिन मिलबे के भक्त की।
अछिरअनिन्न ताते आप को न बस कछू,
विछुरन यों ही सीता रामहित वक्त की।
सिवहू सिवाहू बीच पारै अधरंगे फेर,
ऐसी दैवगति कौन जाने देवशक्त की ॥२१७॥

सोरठा

या कहि कृष्ण विसूर, बोधबधन के भ्रम रहे।
यहि जनाइ जगमूर, करता हरता और है ॥२१८॥

गीतका छन्द

यह बात कहि गोपालजू अति जान गोपिन प्रीत।
कर हाव भाव कटाक्ष बहु उपजी महा रसरीत ॥
जिहि भांति ब्रज में रमत ते रस काम केल विलास।
तेहि भांति सुरत विनोद कर पुजई सबन की आस ॥२१९॥
पुनि भोर आइ सभा विराजे राजकुल जन यत्र।
सनकादि, नारद, व्यास युत आये अखिल ऋषि तत्र ॥
पुनि जग्य किय बसुदेवजू दिय द्विजन दान अपार।
वृषभानु नंदहि आइ दै पहिराइ सब परवार ॥२२०॥
मन बसन भूषण बहुत दै कीन्ही विदा सुख पाय।
नहिं टरत बांधे प्रेम के रहि रहे अति अरराय ॥२२१॥

दोहा

तब हरि सों बसुदेवजू, बचन कहे अकुलाय।
ब्रज जन कुँवर बिदा करौ, चलिये घरहु चेताय ॥२२२॥

चौपाई

तब हरिजू माया विस्तारी। ब्रजजन लागो उचटन भारी ॥
काहूं कही, कहो नहि काहूँ। आतुर चले जहां सु तहांहूँ ॥२२३॥
श्री रुकमिन के घर में राधा। माया तातें करी न बाधा ॥
माया श्री रुकमिन के छाया। तिहि सबको सो मुहि भरमाया ॥२२४॥
चलो चलो राधा सब बोलैं। मचलीं राधा बचन न खोलैं।
बेर द्वै चार कही सतभामा। नहिं राधा बोलें तिहि जामा ॥२२५॥
तब भुख कै बोली कटुबानी। कह गँवार गूजर बौरानी।
मात-पिता कुल जात बिसारी। भरता तजो ब्याहता भारी।
पैठत है परघर बरजोरी। तोसी और न तिय है थोरी ॥२२६॥

हंस छन्द

तब राधा बोली दुख पाइ।
तुम कह जानो भक्त प्रभाइ ॥
लोक लाज तज भजहुँ मुरार।
सब के भरता कृष्ण विचार ॥२२७॥

सत्यभामा बचन

ऐसे नहीं त्रिया के धर्म।
तू गँवार भूली है भर्म ॥
माता-पिता देहिं जिहिं हाथ।
सोई ईश्वर सोई नाथ ॥२२८॥
ताते कोट गुनो पति करै।
निहिचै महानर्क सो परै ॥

जो मों कही बुरी कर भाख।
बूझहु लोक बेद अरु साख ॥२२९॥

श्रीराधा बचन

लोक बेद के धर्म असार।
जानत है कोइ जाननहार॥
लोक वेद ते न्यारो प्रेम।
तुम कह मोहि ढिठावत नेम ॥२३०॥
नेम धर्म लौं जिनके ग्यान।
तिनको स्वर्ग नर्क परवान॥
जिनके हृदय प्रेम परकासि।
मुक्ति भुक्ति है तिन को दासि ॥२३१॥
प्रेम हेत पिघलत पापान।
प्रेम मिलत ईश्वर भगवान॥
जग में प्रेम प्रीति रस-सार।
ना रस और धर्म भ्रमजार ॥२३२॥

सत्यभामा बचन

दोहा

प्रेम प्रेम तू कह करै तोमहि प्रेमजू नाहिं।
जथा भिरै भट सुमन रन गरजै भाट वृथाहि ॥२३३॥

श्रीराधा बचन

दोहा

तुम गति मेरे प्रेम की कहँ जानौ परमान।

कै जानैं श्रीरुकमिनी कै पिय स्याम सुजान ।।२३४।।

सत्यभामा बचन

दोधक छन्द

श्रीरुकमिन प्रिय नाम बतावै ।
बातन कर कर मोहिं रमावै ।।
तोमहिं प्रेम कहा कहि मोसो ।
हौं अब प्रेम-कथा कहौं तो सों ।।२३५।।
प्र म कहे विधि तीन प्रतिष्ट ।
उत्तम, मध्यम और निकृष्ट ।।
उत्तम प्रेम सुनौं सुखदाई ।
पिय बिछुरत जिय संगहिं जाई ।।२३६।।
मध्यम कंथ तजे मरि जाइ ।
होइ निकृष्ट तो लागहिं बाइ ।।
तीन में एक बनी नहिं तो सों ।
का मठ प्रेम बखानत मोसों ।।२३७।।
इतनी सुन बोल लगे अति राधे ।
खिसिआइ उठीं अति सिंधु अगाधे ।।
मुरझाइ गिरीं विरहा तन तायो ।
जल नीर गंभीर गले तन आयो ।।२३८।।

सोरठा

तब हरि पकरी बांहि, कही कढ़ो बाहिर प्रिया ।
जो तुम्हरे मन मांहिं, सो मांगहु बर देहिं हम ।।२३९।।

श्रीराधा बचन

दोहा

जो बर देत दयाल ह्वै, भये प्रेम मम प्रस्न* ।
तो तुम जगत कहावहू, मम युत राधाक्रस्न* ॥२४०॥

श्रीकृष्ण बचन

दोहा

यहि सुनि श्रीभगवंत जू, बर दै कर गहि काढ़ि ।
समझाउन लागे तबहिं, बचन रचन हित बाढ़ि ॥२४१॥
तुम रहि इहँ बाढ़ै कलह, जाउ सदन सुखरीति ।
हम तुमते नहिं दूर प्रिया, चन्द कमोदिन प्रीति ॥२४२॥

श्रीराधा बचन

चंद कमोदिन को धनी, क्यों कर पटतर होइ ।
वे दिन दरस न देत है, तुम्ह कबि दरस न मोइ ॥२४३॥

श्रीकृष्ण बचन

सदा दरस मनभावती, हम तुम अंतर एक ।
दैवी गति बिछुरन रच्यो कबहुँ न करिये टेक ॥२४४॥

श्रीराधा बचन

कुण्डलिया

तब के बिछुरे अब मिले जिये आस लगि तब्ब ।
अब के बिछुरे कब मिलौ धिक जीवन मम अब्ब ॥

---

* प्रस्न के स्थान पर प्रसन्न और क्रस्न के स्थान पर कृष्ण पढ़ना चाहिये ।

धिग जीवन मम अब्ब जु पै सठ प्रान न बिछुरैं।
सतिभामा के बोल होत सांचे अब बिधुरैं॥
तातें अब नहिं जियों होइ भाये मन सब के।
रही कहन को सांस प्रान कंठहि रहे तब के॥२४५॥

बरवै छन्द

या कहि राधा रोई हियरा फाट।
नजर न मुरकन पाई हरिसुध डाट॥
निकसी जोत बदन ते सदन प्रकास।
श्रीमुख माहिं समानी सोक बिनास॥२४६॥

प्रिया छन्द

आई तहाँ रुक्मावती।
देखी मृतक राधावती॥
लै गोद रोदत प्रेम सौं।
निज भक्त हित दुख नेम सौं॥२४७॥
तित आइ देवकि रोहिनी।
मानो गई मनमोहनी॥
रनवास हा हा ह्वै रहीं।
रानी सबै दुख च्वै रहीं॥२४८॥
सुनि मुर्छि गिर ब्रजबासिया।
मनि बिन फनिक तन त्रासिया॥
हरि बिधुर राधा बिन भये।
सब सोकसागर में छये॥२४९॥

मुरिल्ल छन्द

पुनि राधातन क्रिया करि विधि वेद सौं।
ब्रजवासी समुझाय बचन बहु भेद सों॥
बिदा दई भगवंत बोध बहु ग्यान सौं।
गये नंद वृषभान कढ़ि न तन प्रान सौं॥२५०॥

दोहा

तब कुलजुत बसुदेव जू द्वारावति चलि आइ।
अमित दान दीन्हें द्विजन दुंदुभि दई बजाइ॥२५१॥

सवैया

दुंदुभि द्वार बजै हरि द्वारका गोकुल सोकनदी जु बही।
जिन राधिका प्रान तजे बिछुरे, तिनको न कथा कछु जात कही।
जिमि दीप पतंग तथा मछरी जल प्रीति इकंग तबै अबही।
जगकी यह रीति अनिन्न भनै अपने सुखलौं सुख है सब ही॥२५२॥

छप्पय छन्द

प्रीति इकंगी नेम प्रेम गोपिन को गायौ।
बरनन बिरह बिलाप तर्क सब दरसन छायो॥
ग्यान जोग बैराग मधुप उपदेसन भाषो।
भक्त भाव अभिलाष मुःख बनितन मति राखो॥
बहु विधि वियोग संयोग सुख सकल भेद समुझौ भगत।
यह अद्भुत प्रेमप्रदीपिका कहि अनिन्न उद्दित जगत॥२५३॥

❀ इति श्री अनिन्नकृत प्रेम-प्रदीपिका समाप्ता ❀

अयोध्या का इतिहास

हिन्दुओं में भगवान के सब से प्रसिद्ध अवतार श्री रामचन्द्र की जन्मभूमि अयोध्या को कौन नहीं जानता ? यह नगर आदि काल से सूर्यवंश की राजधानी रहा है जिसमें मान्धाता, भगीरथ, जो पृथ्वी पर गंगा जी को लाये थे, दिग्विजयी रघु, दशरथ आदि बड़े बड़े राजा हो गये हैं। इन सब का चरित सरल हिन्दी भाषा में इस अपूर्व ग्रन्थ में सुप्रसिद्ध विद्वान और इतिहासवेत्ता राय बहादुर लाला सीताराम (श्री अवधवासी सीताराम) ने बड़े परिश्रम से संकलित किया है। इस के अतिरिक्त इसमें जैन और बौद्धों का इतिहास, मुसल्मानों के राज में अयोध्या का वर्णन और अन्त में शाकद्वीपी राजाओं का भी कुछ चरित है। इस ग्रन्थ में इस बात के सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि सब बातें ऐतिहासिक हैं। इस की बड़े बड़े विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। प्रसिद्ध जैन विद्वान पंडित अजित प्रसाद जी लिखते हैं कि आपने ऐतिहासिक, पौराणिक सारी बातों का उल्लेख करके हिन्दुओं और जैन दोनों को आभारी बना दिया है। यदि आप को अपने देश का अभिमान है, यदि आपको अपने पूर्व पुरुषों के चरित जानने की रुचि है, यदि आप इस बात को जानना चाहते हैं कि भारतबासियों ने सारे संसार में सभ्यता का सूत्रपात किया, अमरीका मेक्सिको तक पहुँचें तो इस अपूर्व ग्रंथ को पढ़िये। दाम ३) डा. मह. अलग।

प्रकाशक—हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।